● वर्ष 25 ● अंक 3
● अप्रैल-जून 2013

बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन

बैंकिंग पर व्यावसायिक जर्नल

25
रजत जयंती वर्ष
1988 - 2012

सदस्य
ABCI
Member

बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन

विषय सूची

• संपादक मंडल		1
• संपादकीय		2
• अनुचिंतन		4
• परिवर्तन प्रबंधन	डॉ. रमाकांत शर्मा	6
• भारत में पर्दाफाशकर्ता (विसलब्लोअर) का संरक्षण – एक अधूरी शुरुआत	परवेज़ अख्तर	15
• भारतीय रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति – मुद्रास्फीति और संवृद्धि दर में तालमेल का प्रयास	आर. एस. तिवारी	18
• आर्थिक विकास और पर्यावरण	संजय कुमार	22
• वृद्धावस्था में प्रतिगामी बंधक – महत्व एवं उपयोगिता	संतोष श्रीवास्तव	25
• सीमित दायित्व भागीदारी	डी.के. जैन	27
• इतिहास के पन्नों से	एच. पंढरीनाथ	29
• सेवा उद्योग में बहुत जरूरी हैं सॉफ्ट स्किल्स	विजय प्रकाश श्रीवास्तव	33
• ग्रामीण भारत का वित्तीय समावेशन – समावेशी विकास की अनिवार्यता	निधि चौधरी	37
• व्यवसाय प्रतिनिधि – वित्तीय समावेशन के संवाहक	देव राज	43
• कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना – चुनौतियां एवं समाधान	राजेन्द्र सिंह	47
• घूमता आईना	के. सी. मालपानी	53
• पुस्तक समीक्षा	काज़ी मुहम्मद ईसा	57
• लेखकों से/पाठकों से		60

संपादक–मंडल

प्रबंध संपादक

डॉ. रमाकांत गुप्ता
महाप्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

कार्यकारी संपादक

सावित्री सिंह
उप महाप्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

सदस्य सचिव

के. सी. मालपानी
प्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

संपादकीय कार्यालय

भारतीय रिज़र्व बैंक
राजभाषा विभाग, केंद्रीय कार्यालय
गारमेंट हाउस, वरली, मुंबई – 400 018

सदस्य

एस. एन. मिश्रा
मुख्य महाप्रबंधक
इंडियन ओवरसीज़ बैंक, चेन्नै

ब्रिजराज
संकाय सदस्य एवं उप महाप्रबंधक
रिज़र्व बैंक स्टाफ महाविद्यालय, चेन्नै

डॉ. प्रमोद कुमार
महाप्रबंधक, बैंकिंग परिचालन और विकास विभाग
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

डॉ. हरियश राय
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
बैंक ऑफ बड़ौदा, मुंबई

अतुल अग्रवाल
महाप्रबंधक (लेखा-परीक्षा)
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई

अरुण श्रीवास्तव
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई

एम. वी. अशोकन
उप महाप्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

डॉ. अजित कुमार
संकाय सदस्य एवं सहायक महाप्रबंधक
कृषि बैंकिंग महाविद्यालय, भारतीय रिज़र्व बैंक, पुणे

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिए गए विचार संबंधित लेखकों के हैं। यह आवश्यक नहीं है कि भारतीय रिज़र्व बैंक उन विचारों से सहमत हो । इसमें प्रकाशित सामग्री को उद्धृत करने पर भारतीय रिज़र्व बैंक को कोई आपत्ति नहीं है बशर्ते स्रोत का उल्लेख किया गया हो ।

डॉ. रमाकांत गुप्ता द्वारा भारतीय रिज़र्व बैंक, राजभाषा विभाग, गारमेंट हाउस, वरली, मुंबई–400 018 के लिए संपादित और प्रकाशित तथा इंडिया प्रिंटिंग वर्क्स, मुंबई में मुद्रित ।
इंटरनेट http://www.rbi.org.in/hindi पर भी उपलब्ध । E-mail : rajbhashaco@rbi.org.in फोन 2494 8263 फैक्स 2498 2077

संपादकीय....

प्रिय पाठको,

''सचिव, वैद, गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीन कर होइ बेगि ही नास।।''

– तुलसी दास

चिंतन

गोस्वामी तुलसी दास जी ने मानस में बिल्कुल ठीक लिखा है। सलाहकार मंत्री ही नहीं, दोस्त, सहकर्मी, पति–पत्नी, परिवार जन आदि कोई भी हो सकता है। सलाहकार के रूप में उनका काम ठीक रास्ता दिखाना है। पर अगर ये स्वार्थवश या भय के कारण सही रास्ता न दिखाएं तो विनाश अवश्यंभावी है। देश में पर्दाफाशकर्ता अथवा विसलब्लोअर की भूमिका भी कुछ ऐसी ही है। उसका काम संस्था में जन्म ले रही कुरीतियों के प्रति प्रशासन को जागरूक करना है, चाहे उन कुरीतियों का संबंध कितने ही बड़े अधिकारी से क्यों न हो। यदि वह ऐसा नहीं करता अथवा यदि उसकी सेवा–शर्तें ऐसा करने से उसे रोकती हैं तो उसकी नियुक्ति महज एक औपचारिकता बनकर रह जाएगी। मुझे खुशी है कि इस पत्रिका में शायद पहली बार इस महत्वपूर्ण विषय को लेकर श्री परवेज़ अख्तर द्वारा लिखा गया लेख प्रकाशित किया जा रहा है। इस लेख में पर्दाफाशकर्ता संबंधी कानूनी पहलुओं से लेकर देश से भ्रष्टाचार मिटाने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका तक के बारे में ब्यौरेवार प्रकाश डाला गया है।

इस अंक में और भी कई नए और अनछुए विषय शामिल किए गए हैं, जिनमें से एक है ''प्रतिगामी बंधक''। बैंकों द्वारा चलायी जा रही यह एक ऐसी योजना है, जिससे हमारे बुजुर्ग लोग सम्मान के साथ जीवन–यापन कर सकते हैं। वैसे भी हमारे देश में विकसित देशों की तुलना में सामाजिक सुरक्षा उपाय काफी कम हैं और जो हैं उनका सीधा संबंध बैंकिंग जगत से नहीं है। ऐसे में सीधे बैंकिंग जगत से जुड़े सामाजिक सुरक्षा उपाय से पाठकों को रू–ब–रू कराना पत्रिका के संपादक मंडल की जिम्मेदारी थी, जिसे हमने पूरा किया है। लेख छोटा अवश्य है, पर उसमें इस योजना के सभी पहलुओं को छूने का शैशव प्रयास किया गया है। इसी तरह, सीमित देयता भागीदारी जैसे एक और अनछुए पहलू पर श्री डी.के. जैन का लेख शामिल किया गया है, जिसमें सीमित देयता भागीदारी अधिनियम, 2008 की मुख्य–मुख्य बातें संक्षेप में हमारे सामने रखी गई हैं। आशा है पाठक इन्हें भी उपयोगी पाएंगे। मुझे मालूम है कि ये दोनों संक्षिप्त लेख पाठकों की ज्ञान–पिपासा को और बढ़ाएंगे पर साथ ही यह विश्वास भी दिलाता हूं कि भविष्य में इन महत्वपूर्ण विषयों पर ब्यौरेवार लेख प्रकाशित करने की संपादक मंडल की पूरी कोशिश होगी।

अर्थव्यवस्था में मंद वृद्धि के कारण कंपनियों की समय पर कर्ज़ चुकाने की क्षमता में कमी आयी है, जिसके कारण कॉरपोरेट कर्ज़ पुनःसंरचना (सीडीआर) के माध्यम से भारतीय बैंकों द्वारा कुल पुनःसंरचित कर्ज़ की मात्रा दिसंबर 2012 को समाप्त तिमाही में ₹ 2 ट्रिलियन से अधिक अर्थात् ₹ 24,584 करोड़ तक पहुंच गई और अधिकांश पुनःसंरचना का संबंध लोहा व इस्पात, बुनियादी संरचना, वस्त्र एवं निर्माण क्षेत्रों से है। रेटिंग एजेंसियां ऐसे पुनःसंरचित कर्ज़ की बढ़ती हुई मात्रा पर कड़ी निगरानी रखती हैं। इस महत्वपूर्ण प्रासंगिक विषय की विस्तृत विवेचना श्री राजेंद्र सिंह के लेख ''कॉरपोरेट कर्ज़ की पुनःसंरचना – चुनौतियां एवं समाधान'' में की गई है।

जब तक देश ''नहिं दरिद्र कोउ, दुखी न दीना'' जैसी रामराज्य की आदर्श स्थिति तक नहीं पहुंच जाता, तब तक वित्तीय समावेशन की प्रासंगिकता समाप्त नहीं होगी और इसीलिए इस विषय पर श्री देवराज और सुश्री निधि चौधरी के लेख शामिल किए

गए हैं। मौद्रिक नीति का निर्धारण केंद्रीय बैंकिंग का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है और आज के परिवेश में यह कर्तव्य काफी चुनौतीपूर्ण बन गया है। श्री आर.एस. तिवारी ने इस चुनौतीपूर्ण विषय का विवेचन अपने लेख में किया है। अब सभी लोग यह मानने लगे हैं कि पर्यावरण को नष्ट करके धारणीय संवृद्धि (अर्थात् सस्टेनेबल ग्रोथ) संभव नहीं है। यही कारण है कि आज ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोतों की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। श्री संजय कुमार के लेख में इस पहलू पर प्रकाश डाला गया है।

परिवर्तन जीवन का अभिन्न अंग है परंतु मनुष्य हमेशा बदलाव से बचने का प्रयास करता है। इन सभी बदलावों का प्रबंधन कैसे किया जाए इस पर प्रकाश डाला है डॉ. रमाकांत शर्मा ने अपने आलेख ''परिवर्तन प्रबंधन'' में।

साथ ही, श्री पंढरीनाथ ने 'इतिहास के पन्नों से' नामक स्तंभ के माध्यम से पाठकों को 11 नवंबर 1919 को स्थापित हुए यूनियन बैंक ऑफ इंडिया के इतिहास के गलियारों की सैर कराई है तथा देश–दुनिया की नवीनतम आर्थिक–वित्तीय गतिविधियों को संक्षेप में उजागर किया है – पत्रिका की संपादकीय समिति के सदस्य–सचिव श्री के. सी. मालपानी ने अपने लेख 'घूमता आईना' में।

अनुचिंतन

आज पूरे विश्व में समावेशी संवृद्धि की और बैंकों के संदर्भ में वित्तीय समावेशन की बात की जा रही है। 2001 की जनगणना के अनुसार देश में हिंदी बोलने वालों की संख्या 42.20 करोड़ थी। 5.15 करोड़ उर्दू बोलने वालों को भी शामिल कर दें तो यह संख्या 47.35 करोड़ तक पहुंच जाएगी जो उस समय की 102.86 करोड़ आबादी का 46 प्रतिशत है। हिंदी बोलने वाले लोग सिर्फ हिंदी–भाषी क्षेत्रों तक सीमित नहीं थे, अपितु महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, गुजरात, जम्मू कश्मीर, पंजाब, असम और कर्नाटक जैसे राज्यों में भी हिंदी–भाषी लोगों की आबादी क्रमशः 106.8, 57.4, 24.6, 23.8, 18.7, 18.5, 15.6 और 13.4 लाख थी।

सच पूछा जाए तो हिंदी जानने वाले नागरिकों का अनुपात जनगणना तक सीमित नहीं है क्योंकि आज हिंदी का जनाधार ऐसे वर्ग तक व्याप्त है जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है। इसीलिए श्री शिव सागर मिश्र ने कहा है, ''हिंदी वस्तुतः ऐतिहासिक अनिवार्यता के आधार पर तेरहवीं सदी तक आते–आते संपूर्ण देश की संपर्क भाषा बन चुकी थी।... अपने जन्म और स्वभाव से ही हिंदी अंतर–प्रादेशिक भाषा है।... संसार के लगभग 50 देशों में इस भाषा को मज़दूरों ने प्रचारित–प्रसारित किया।... बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से संसार में हिंदी का स्थान तीसरा है।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि हिंदी के बिना वित्तीय समावेशन का सपना साकार हो ही नहीं सकता। अन्य भाषा–भाषियों में हिंदी जानने वालों की संख्या को भी शामिल करें तो देश में हिंदी जानने वाली कुल आबादी 46 प्रतिशत से भी बहुत अधिक है और इस बड़ी आबादी की भाषा की अनदेखी कर वित्तीय साक्षरता और वित्तीय समावेशन लाना असंभव है।

अन्य भारतीय भाषाओं की प्रगति भी हिंदी की प्रगति के साथ जुड़ी हुई है। भारत सरकार ने इंस्क्रिप्ट की–बोर्ड में सभी भारतीय लिपियों को एक साथ ला दिया है और इंस्क्रिप्ट की–बोर्ड सीखने के बाद किसी भी भारतीय भाषा में टाइप करना संभव हो गया है। की–बोर्ड की ही तरह पारिभाषिक शब्दावली में भी एकरूपता लाने की कोशिश की जाए तो भारतीय भाषाएं और भी करीब आएंगी और उनका और तेजी से विकास होगा और उसी के साथ विकास होगा हर भारतीय का और पूरे भारत का।

पिछले अंक के बारे में पाठकों ने खुलकर अपनी राय दी और उससे हमारा उत्साह बढ़ा। हम ऐसे सभी उत्साह–वर्धक पाठकों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। पत्रिका के पाठकों से विशेष अनुरोध है कि वे इस अंक के प्रति भी अपनी अनुक्रिया और बहुमूल्य सुझाव ramakantgupta@rbi.org.in अथवा savitrisingh@rbi.org.in नामक ई–मेल पतों पर अथवा डाक से अवश्य प्रेषित करें, ताकि हम इस पत्रिका को उनकी ज़रूरतों के अधिक अनुकूल बना सकें।

शुभकामनाओं सहित,

आपका

(डॉ. रमाकांत गुप्ता)

अ | नु | चिं | त | न

बैंकिंग चिंतन–अनुचिंतन का जनवरी–मार्च 2013 अंक प्राप्त हुआ। इस अंक में प्रकाशित श्री आर.एस.तिवारी का लेख 'एक करेंसी नोट की जीवन यात्रा–छपने से नष्ट होने तक' बहुत ही रोचक और सूचनापरक है। इस लेख के माध्यम से उन्होंने करेंसी नोटों को छपवाने से उनके वितरण तक की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की है। उनका यह प्रयास सराहनीय है।

आगामी अंकों के लिए शुभकामनाओं सहित,

● बी. पी. विजयेन्द्र
प्रधान मुख्य महाप्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक
मुद्रा प्रबंध विभाग, मुंबई

बैंकिंग चिंतन–अनुचिंतन का जनवरी–मार्च 13 अंक परंपरागत रूप से पिछले अंकों की तरह उत्कृष्टता लिए हुए है। अनुचिंतन में संपादक जी ने भाषा और लिपि के मध्य संबंधों का सारगर्भित विश्लेषण किया है। भारत जैसे बहुभाषी, बहुलिपि वाले देश में सामंजस्यता के लिए इस संबंध में स्पष्ट नीति का होना नितांत आवश्यक है। श्री के. सी. मालपानी ने सदैव की तरह 'घूमता आईना' को 360^0 तक घुमाया है और विविध जानकारियों को अद्यतन किया है। ''एक करेंसी नोट की जीवनयात्रा'' आम आदमी के लिए रोचक है वहीं बैंकरों के लिए भी जानकारीपूर्ण है। ''बैंकिंग में ग्राहक हित रक्षा'' पीडित ग्राहकों के लिए उपयोगी है। आज बैंकिंग जगत में ग्राहक सेवा का प्रचार–प्रसार तो किया जाता है किंतु वास्तव में कागज में फूलों से महक पैदा करने का प्रयास किया जाता है।

ग्राहकों की अपेक्षाएं भी ज्यादा बढ़ गई हैं और इसी कारण विवादों का जन्म होता है। आज ग्राहकों को लुभाने लिए बड़े– बड़े वादे किए जाते हैं और छोटा सा सितारा चस्पा करके ''शर्तें लागू'' बताया जाता है। बैंक निःशुल्क सेवाओं का प्रचार–प्रसार करता है और कुछ दिनों बाद उसी सेवा पर चुपके से शुल्क वसूलना प्रारंभ कर देता है। बैंक कोई धर्मार्थ संस्था नहीं है इसलिए शुल्क के साथ सेवा उसका नारा होना चाहिए और शुल्क के संबंध में पारदर्शिता होनी चाहिए।

अन्य आलेख भी रोचक और सूचनाप्रद है। सभी लेखकों को बधाई।

● विश्वनाथ सिंहानिया
प्रबंधक, सेवानिवृत्त
भारतीय रिज़र्व बैंक

बैंकिंग चिंतन–अनुचिंतन त्रैमासिक जनवरी–मार्च 2013 का अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय में शहरों के नाम निश्चित सुधारपूर्वक लिखने का सुझाव स्वीकार्य है। संपादक मंडल योग्यतापूर्वक वाचन–खाद्य परोसने का उचित कार्य कर रहा है। आर. एस. तिवारी का 'एक करेंसी नोट की जीवन यात्रा – छपने से नष्ट होने तक' तथा डॉ. सुबोध कुमार एवं राजपाल सिंह रावत का 'बैंकिंग में ग्राहक हित रक्षा – बैंकिंग लोकपाल निर्णीत मामलों के आलोक में' यह सामान्य जानकारी लेख महत्वपूर्ण रहा। सावित्री सिंह के इतिहास के पन्नों से ''स्टेट बैंक ऑफ पटियाला'' ने अपनी कहानी पाठकों के सामने रख दी। ''घूमता आईना'' से के. सी. मालपानी का ब्रेकिंग न्यूज़ – बड़ी खबर जैसा प्रतीत हुआ। ''बहु–ब्रैंड खुदरा कारोबार में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश मुद्दे एवं विवेचना'' तथा ''भारत की वर्तमान परिस्थितियों में एफडीआई का महत्व'' में निधि चौधरी, संतोष श्रीवास्तव ने पाठकों को संतुष्ट किया। बैंकिंग चिंतन–अनुचिंतन के सभी लेख वाचनीय हैं। उत्कृष्ट पत्रिका संपादन हेतु मेरी और हमारे समूह की अनेक शुभेच्छा।

● पंजाब कल्याणकर देशमुख
नांदेड, महाराष्ट्र

बैंकिंग चिंतन–अनुचिंतन का अक्तूबर–दिसंबर 2012 का ''पूंजी पर्याप्तता एवं बासेल मानक विशेषांक'' मिला। बासेल–III जैसे गहन तकनीकी विषय पर सरल हिन्दी में प्रस्तुत सारे लेख वास्तव में इस प्रगतिशील युग में भी हिन्दी भाषा की समृद्धि और शक्ति के द्योतक हैं। समसामयिक विषय पर यह अंक, निश्चित ही, बैंकों में बासेल–III के प्रति जागरूकता पैदा करने में अग्रदूत का कार्य करेगा। ''इतिहास के पन्नों से'' एवं ''घूमता आईना'' अत्यंत रोचक एवं ज्ञानवर्धक है। पत्रिका में भाषा की शुद्धता, विचारों की स्पष्टता और सादगी दिल को छूती है। संपादक मंडल और लेखकों ने पत्रिका को सार्थक रूप दिया – सभी को बधाई।

अगले अंक की प्रतीक्षा में शुभकामनाओं सहित,

● सुलेखा मोहन
सहायक महाप्रबंधक
केनरा बैंक, बंगलुरु

भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रकाशित बैंकिंग चिंतन–अनुचिंतन का जनवरी–मार्च 2013 अंक प्राप्त हुआ। यह अंक बहुत ही ज्ञानवर्धक एवं सारगर्भित है। इसमें बहुत ही प्रासंगिक विषयों को स्थान दिया गया है। वैसे तो इसमें शामिल सभी लेख बहुत ज्ञानवर्धक हैं लेकिन संपादकीय में माननीय डॉ. गुप्ता जी ने बहुआयामी अनेक विषयों को बहुत ही करीब से तराशा है। उन्होंने ग्राहक असंतुष्टि तथा शिकायतों को नई परिभाषा देकर ग्राहक सेवा में सतत सुधार की संभावना का मार्ग प्रशस्त किया है।

बहुचर्चित समसामयिक विषय ''बहु ब्रांड खुदरा कारोबार में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश – मुद्दे एवं विवेचना'' पर सुश्री निधि चौधरी, भारतीय प्रशासनिक सेवा का लेख इसके व्यावहारिक तथा प्रशासनिक हर पहलू से रू–ब–रू कराता है। इसके साथ ही बुद्धिजीवी तथा आम जनमानस के मन में चल रहे अनेक प्रश्नों जैसे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी या कम होगी, किसानों की आय में वृद्धि होगी या गिरावट, छोटे दुकानदारों को फायदा होगा या नुकसान, रोजगार के अवसर बढ़ेंगे या बेरोजगारी, पूंजी निवेश होगा या फिर बाजार पर एकाधिकार कायम होगा, को बड़ी सहजता से समालोचनात्मक ढंग से स्पष्ट करता है। इसके अलावा करेंसी नोट की जीवन यात्रा, संदेहास्पद लेनदेन प्रतिवेदन आदि लेख पठनीय व संग्रहणीय हैं।

● सुरेश कुमार
वरिष्ठ प्रबंधक (राभा)
कार्पोरेशन बैंक
आंचलिक कार्यालय, अहमदाबाद

मुखपृष्ठ से आवरण–अंतिम पृष्ठ तक खूबसूरत पत्रिका का वर्ष 25 अंक 2 जनवरी मार्च 2013 सहर्ष प्राप्त हुआ। शुरू से अंत तक पढ़ा। अंक के सभी आलेख वर्तमान घड़ी में व्याप्त आर्थिक वस्तुस्थिति का सही वर्णन व सटीक विवेचन संजोए हैं। एक बैंकर तथा वित्तीय निगम संचालक, निर्देशक एवं कर्णधार/वरिष्ठ कार्यपालक के लिए मार्गदर्शक, प्रत्येक पहलू पर जागरूकता से सतर्कता बरतने के लिए सर्वतोपरि सहायक और सारगर्भित, ज्ञानभरी जानकारी से ओतप्रोत लेखों का यह अंक एक आदर्श नमूना है जिसमें बैंकिंग लोकपाल निर्णीत मामलों की व्याख्या सन्निहित है जिससे बैंकर और ग्राहक दोनों का लाभान्वित होना स्वयंसिद्ध है। भारतीय रिज़र्व बैंक की यह पत्रिका, जिसका रजत जयंती वर्ष मनाया जा रहा है, अन्य विशेषांकों के समान संग्रहणीय तथा संदर्भ सूचना के लिए अत्यंत उपयोगी है। आज विश्वव्याप्त आपराधिक गतिविधियों के माहौल में सतर्क रहकर वित्तीय आसूचना इकाई से सम्पर्क करके देशहित में सहायक होने हेतु सक्रिय सहभागिता अदा करने को बाध्य करती है पत्रिका में निहित सामग्री। अतः संक्षेप में यह पत्रिका वित्तीय क्षितिज के परिवेश में संलग्न प्रत्येक स्तर के व्यक्ति के लिए ज्ञानामृत है जिसकी उत्तरोत्तर बढ़ती उपयोगिता निरंतर बरकरार रहे और संपादक मंडल को सदैव ढेर सारी शुभकामनाएं मिलती रहें। इसी शुभेच्छा के साथ पत्रिका के अगले अंक की प्रतीक्षा में,

● हरिश्चंद्र सा. अग्रवाल
भारतीय स्टेट बैंक, आकोला

परिवर्तन प्रबंधन

डॉ. रमाकांत शर्मा
सेवानिवृत्त महाप्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

इस परिवर्तनशील दुनिया में हर क्षण परिवर्तन होते रहते हैं। जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जहां निरंतर परिवर्तन न दिखाई देते हों। मौसम में परिवर्तन के रूप में जहां हम नैसर्गिक परिवर्तनों से रूबरू होते हैं, वहीं अपने घर के भीतर भी हमें हर तरह के परिवर्तन दिखाई देते हैं। व्यक्तियों के स्वभाव से लेकर उनके व्यवहार, उनकी पोशाक, भोजन, आने-जाने के साधन, घरेलू सामान, घर की साजसज्जा तक में परिवर्तन होते रहते हैं। कुछ परिवर्तन जरूरतों के कारण होते हैं तो कुछ केवल नयापन लाने और महसूस करने के लिए होते हैं।

उपर्युक्त के अलावा, ज्ञान के क्षेत्र में भी निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। पूरे विश्व में जनसंख्या में स्पष्ट परिवर्तन हो रहे हैं। विश्व के संसाधनों की जानकारी, विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, साहित्य जैसे सभी क्षेत्रों में परिवर्तन होते हैं, जिनका हमारे जीवन पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी होता है। कल के विश्व में रहने और अपने काम को कारगर ढंग से अंजाम देने के लिए निश्चित तौर पर हमें अपने अंदर भी बदलाव लाने होंगे और अपनी योग्यता तथा दक्षता को बढ़ाना होगा।

परिवर्तन स्वीकार करना जरूरी क्यों

अधिकांश लोग परिवर्तन को स्वीकार नहीं कर पाते और उनका विरोध करते हैं। इससे उनके अन्य लोगों से पिछड़ जाने का गंभीर खतरा उत्पन्न हो जाता है। विशेषकर, प्रबंधकों की दुनिया में नए नियम/विनियम, नए स्थान, नई नीतियां और नई प्रौद्योगिकी आदि अभिन्न अंग होते हैं। यदि किसी व्यक्ति की स्वभावगत विशेषता इन परिवर्तनों को स्वीकार न करने की होगी तो वह उस संस्था को भी हानि पहुंचाएगा जिसने उसे प्रबंधक के रूप में नियोजित किया है। साथ ही, वह अपने साथ काम करने वालों को भी परिवर्तन को स्वीकार करने और उसके जरिए प्रगति के पथ पर कदम बढ़ाने से रोकने का कारण बन जाता है।

परिवर्तनों को स्वीकार करने और बदलते परिदृश्य के साथ कदम मिलाने के लाभ तभी मिल सकते हैं जब प्रबंधक पहल करने से नहीं डरता हो। पहल करना आगे बढ़कर नेतृत्व प्रदान करना है। कुछ लोग स्वयं पहल करने से बचते हैं और चाहते हैं कि यदि कुछ नया करना हो तो दूसरे लोग करें ताकि यदि नए कदम असफल हों तो उनका दायित्व उन्हें न लेना पड़े। इस बात में कोई संदेह नहीं कि जब भी कोई नया कदम उठाया जाता है तो उसकी सफलता और असफलता की बराबर की संभावनाएं होती हैं। असफलता का डर तथा परिवर्तनों को आसानी से स्वीकार न करने वालों की आलोचना के डर से ही अक्सर लोग पहल करने से डरते हैं। लेकिन, इसके दुष्परिणामों से बचना स्वयं प्रबंधक के लिए उतना ही जरूरी है जितना कि उसकी संस्था के लिए।

परिवर्तन का विरोध क्यों ?

ऊपर हमने इस बात पर चर्चा की है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यदि कोई परिवर्तन न हो तो इससे बड़ा कोई परिवर्तन नहीं होगा। वास्तव में, ज्ञान के हर क्षेत्र में निरंतर होने वाले परिवर्तनों के मद्देनजर हमारे काम के तरीकों में परिवर्तन होना/लाना लाजिमी है। यदि हम परिवर्तन नहीं लाते या उन्हें स्वीकार नहीं करते तो हमें अपने उन प्रतिस्पर्धियों से पीछे रहने और यहां तक कि अपना कारोबार बंद करने तक के लिए तैयार रहना होगा जो समय के साथ चलते हैं और उसके अनुरूप परिवर्तन लाने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। इतने बड़े जोखिम के बावजूद परिवर्तन का विरोध किया जाता है और किसी भी परिवर्तन को, चाहे वह बड़ा हो या छोटा, आसानी से स्वीकार नहीं किया जाता। आखिर ऐसा क्यों

होता है, इसे समझने के लिए हमें परिवर्तन के विरोध के कारणों को निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित करके देखना होगा –

1. व्यक्तिगत कारण,
2. सामूहिक कारण।

आइए, इन पर विस्तार से चर्चा करें।

व्यक्तिगत कारण

परिवर्तन के विरोध के लिए व्यक्तियों का प्रत्यक्ष ज्ञान, उनकी जरूरतें और उनके खुद के व्यक्तित्व जैसी मानवीय विशेषताओं का बड़ा हाथ होता है। अतः किसी भी परिवर्तन का विरोध निम्नलिखित व्यक्तिगत कारणों से किया जाता है –

(i) **आदत –** परिवर्तन का विरोध करने का सबसे बड़ा कारण आदत है। व्यक्ति जिस माहौल में रहता है, जिस तरीके से काम करता है, जिस तरह से अपना समय व्यतीत करता है और जिन लोगों के साथ रहता है, ये सब उसकी आदत बन जाते हैं। इस आदत का ही परिणाम होता है कि परिवर्तन के तौर पर चाहे उसे कितना ही अच्छा माहौल मिले, कितना ही बेहतर काम करने का तरीका मिले, कितना ही बेहतर उसे समय बिताने का मौका मिले, कितने ही बेहतर लोगों का साथ मिले, वह उसे स्वीकार नहीं कर पाता। यह कहा जाता है कि व्यक्ति जिन असुविधाओं का आदी हो जाता है, वे ही उसे सुविधाएं लगने लगती हैं। अतः जब परिवर्तन की बात चलती है तो वह बेहतर सुविधाओं/प्रक्रियाओं/क्रियाविधियों का भी विरोध करता है।

इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि एक व्यक्ति अपनी आदतों का गुलाम होता है। अतः जब भी परिवर्तन की बात होती है, उससे उसका रुटीन प्रभावित होता है और वह परिवर्तन को स्वीकार करने से बचने लगता है। उदाहरण के लिए, यदि हमेशा दिन की शिफ्ट करने वाले व्यक्ति से यह कहा जाए कि वह अब से रात की शिफ्ट में काम करेगा तो वह स्वाभाविक रूप से उसका विरोध करेगा।

(ii) **अज्ञात का भय –** परिवर्तन ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाता है जिससे अनिश्चितता, अस्पष्टता और संदिग्धता की भावना उत्पन्न होती है। अतः लोग आसानी से परिवर्तन को स्वीकार नहीं कर पाते। उन्हें यह भय सताता है कि यदि वे परिवर्तन को स्वीकार करते हैं तो न जाने उन्हें किस तरह के माहौल में रहना होगा, किस प्रकार के लोगों से पाला पड़ेगा, किन कठिनाइयों/असुविधाओं का सामना करना पड़ेगा, काम करने की नई तकनीक कैसी होगी या फिर वे उसे सीख भी पाएंगे या नहीं।

(iii) **सुरक्षा –** परिवर्तनों को आसानी से स्वीकार न कर पाने का एक कारण सुरक्षा के प्रति तमाम तरह की आशंकाएं भी होती हैं। ये आशंकाएं अधिकारों की सुरक्षा, नौकरी की सुरक्षा, भविष्य की सुरक्षा से लेकर स्वास्थ्य और जीवन की सुरक्षा तक से संबंधित हो सकती हैं। कोई भी नया कदम अनिश्चितताओं से भरा होता है, जिससे असुरक्षा की आशंका उत्पन्न होती है।

(iv) **आर्थिक कारण –** आर्थिक कारणों से भी लोग परिवर्तन का विरोध करते हैं। जब तक उन्हें यह विश्वास न हो कि परिवर्तन से वे आर्थिक रूप से विपरीत तौर पर प्रभावित नहीं होंगे, वे किसी भी प्रकार के परिवर्तन को स्वीकार नहीं करेंगे, बल्कि उसका पुरजोर विरोध करेंगे। यह चिंता कि कहीं यह परिवर्तन उनकी आय में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कमी का कारण न बन जाए, व्यक्ति को अक्सर परिवर्तन के विरोध में खड़ा कर देती है। उदाहरण के लिए, यदि कर्मचारियों की आय को उत्पादकता से जोड़ने की बात की जाए तो वे तुरंत सतर्क हो जाएंगे। इसी प्रकार, स्थानांतरण के मामले में वे देखेंगे कि ऐसे स्थानांतरण की वजह से उन्हें कोई आर्थिक हानि तो नहीं हो रही है। यह हानि नए शहर में ऐसे खर्चों के कारण हो सकती है जो उनके वर्तमान शहर में उन्हें नहीं करने पड़ते। जैसे वर्तमान शहर में उनका खुद का मकान होने के कारण उन्हें किराए पर कुछ खर्च नहीं करना पड़ता हो, नए केंद्र में उन्हें कार्यालय आने–जाने के लिए ज्यादा खर्च तो

नहीं करना पड़ेगा या फिर बड़ा शहर होने के कारण उन्हें ज्यादा महंगाई का सामना तो नहीं करना पड़ेगा। हो सकता है कि बच्चों की शिक्षा पर भी उसे नए शहर में दुगुना–तिगुना व्यय करना पड़े। क्योंकि इस प्रकार के बढ़े खर्चे उसकी आय को परोक्ष रूप से घटाते हैं, अतः उसे परिवर्तन के विरोध में खड़ा कर सकते हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि हर परिवर्तन के अपने आर्थिक परिणाम होते हैं जिनके कारण लोग उसे स्वीकार करने से हिचकते हैं।

(v) **पूर्वाग्रह –** हर व्यक्ति अपने–अपने तरीके से चीजों को देखता और उनका आकलन करता है। व्यक्ति अपने स्वयं के नजरिए से ही अपना संसार रचता है। उसका नजरिया ही उसके लिए सही होता है। चाहे वह कितना ही गलत क्यों न हो, उससे हटने के लिए तैयार नहीं होता। अपने नजरिए को पुष्ट करने के लिए ही वह सूचनाओं, घटनाओं और स्थितियों का आकलन करता है और उनके अर्थ निकालता है। वह जो देखना चाहता है, वही देखता है और जो सुनना चाहता है, वही सुनता है। वह ऐसी सूचनाओं को नजरअंदाज करता है जो उसके द्वारा रचित संसार को जरा भी ठेस पहुंचा सकती हो। अतः किसी भी प्रकार का परिवर्तन उसके लिए ऐसी चुनौती बन कर आता है, जिसे वह स्वीकार नहीं कर पाता।

सामूहिक कारण

व्यक्ति तो उपर्युक्त व्यक्तिगत कारणों से परिवर्तन का विरोध करता ही है, संस्था या फिर उसमें काम करने वाले व्यक्ति–समूह, संस्था के विभाग/अनुभाग या कोई अन्य इकाई भी ऐसे कारणों से परिवर्तन का विरोध करते हैं, जिनसे वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। इनमें से कुछ कारणों पर यहां संक्षेप में चर्चा की जा रही है।

(i) **परिवर्तन का केंद्र बनना –** जब कभी परिवर्तन पूरी संस्था में न होकर किसी विभाग/अनुभाग/इकाई या फिर व्यक्ति समूह तक सीमित होता है तो स्वाभाविक तौर पर उसका विरोध किया जाता है। चाहे ऐसा परिवर्तन कितना ही जरूरी क्यों न हो, यह मान लिया जाता है कि सिर्फ उन्हें ही निशाना बनाया जा रहा है। यह भी महसूस किया जाता है कि उन्हें अकार्यकुशल समझकर उन पर परिवर्तन लादा जा रहा है। इससे उनमें एक हीनता की भावना भी पनपने लगती है। इसके अलावा, उन्हें लगता है कि उन्हें साजिश का शिकार बनाया जा रहा है। यह भावना उनमें सामूहिक असुरक्षा को बल देती है और वे एक साथ मिलकर परिवर्तन का विरोध करने लगते हैं। उन्हें लगता है कि यह परिवर्तन उनकी भलाई के लिए न होकर उनके अस्तित्व के लिए चुनौती है और यह उनकी अस्तित्व रक्षा का प्रश्न बन जाता है। इस प्रकार, जब परिवर्तन सीमित रूप में किया जाता है तो उससे प्रभावित होने वाले लोग संगठित रूप से उसका विरोध करने लगते हैं।

(ii) **सीमित परिवर्तन –** कोई भी संस्था परस्पर निर्भर उप–प्रणालियों पर आधारित होती है, अतः किसी भी एक प्रणाली में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता जो दूसरी प्रणाली/प्रणालियों को प्रभावित न करे। उदाहरण के लिए, यदि संगठनात्मक ढांचे में परिवर्तन लाए बिना प्रौद्योगिकीय प्रक्रियाओं में परिवर्तन कर दिया जाए तो प्रौद्योगिकी में परिवर्तन को स्वीकार करना मुश्किल होगा। इसी प्रकार, उप–प्रणालियों में किए गए सीमित परिवर्तन तब तक स्वीकार नहीं किए जा सकेंगे जब तक कि उससे संबद्ध अन्य प्रणालियों में भी साथ–साथ परिवर्तन न किए जाएं।

(iii) **सामूहिक विरोध –** कई बार व्यक्तिगत तौर से लोग परिवर्तन को स्वीकार करने और अपने व्यवहार में परिवर्तन के लिए तैयार होते हैं, पर वे जिस समूह से संबद्ध होते हैं, उसके मानदंड उन्हें ऐसा करने से रोकते हैं। उदाहरण के लिए, व्यक्तिगत रूप से कोई कर्मचारी प्रबंध–तंत्र द्वारा प्रस्तावित परिवर्तनों को स्वीकार करने के लिए कितना भी तैयार हो, पर यदि कर्मचारी संघ उन परिवर्तनों के विरुद्ध हो तो वह भी उन परिवर्तनों का विरोध करने के लिए विवश होगा।

(iv) विद्यमान संसाधन–आबंटन में कमी की आशंका – संस्था के भीतर कार्यरत समूह किसी भी परिवर्तन के विरोध में खड़े हो जाते हैं और उसे अपने लिए खतरे के तौर पर देखते हैं जिनका संसाधनों के बड़े भाग पर नियंत्रण होता है। उदाहरण के लिए, परिवर्तन लागू होने के परिणामस्वरूप विभाग आदि के बजट में या फिर कर्मचारियों की संख्या में कटौती की संभावना से उसका विरोध किया जाता है। इस प्रकार, विद्यमान संसाधन आबंटन से जो विभाग आदि सबसे ज्यादा लाभान्वित हो रहे होते हैं, वे हर ऐसे परिवर्तन का विरोध करने के लिए प्रवृत्त होते हैं जिससे उनके लिए आबंटित संसाधनों में कमी होने की आशंका हो।

(v) विशेषज्ञता के लिए खतरा – परिवर्तनों के विरोध का कारण ऐसे विभागों का महत्व कम होना हो सकता है जो तब तक विशेषज्ञ के रूप में काम कर रहे थे और संस्था में उनकी एक अलग पहचान थी और एक अलग रुतबा था। उदाहरण के लिए, वर्ष 1980 की शुरुआत में कंपनियों के सूचना प्रणाली विभागों ने पर्सनल कंप्यूटर उपलब्ध कराने का इसलिए विरोध किया था क्योंकि उनके जरिए प्रबंधक कंपनी के मेनफ्रेम कंप्यूटर से सीधे ही मनचाही सूचना प्राप्त कर सकते थे। इससे केंद्रीकृत सूचना प्रणाली विभाग को अपना महत्व कम होता नजर आ रहा था और वे उसे अपने विशेषज्ञ स्वरूप के लिए खतरा मान कर उसका विरोध कर रहे थे।

(vi) स्थापित शक्ति–केंद्रों को खतरा – परिवर्तन के परिणामस्वरूप यदि किसी निर्णय लेने वाले प्राधिकारी को उसके वर्तमान पद/स्थान से हटाकर किसी अन्य पद/स्थान पर लगाया जाता है तो इससे संस्था के भीतर लंबे समय से चले आ रहे शक्ति–केंद्रों को खतरा हो सकता है, अतः उनके द्वारा ऐसे परिवर्तनों का विरोध किया जाता है। इसी प्रकार, निर्णय लेने की प्रक्रिया में सभी को शामिल करने या फिर स्व–प्रबंधित कार्यदल बनाने की योजना लागू करने का विरोध इसलिए किया जा सकता है क्योंकि इसे प्रबंधक/सुपरवाइजर अपने निर्णय लेने या निर्णयों को प्रभावित करने के अधिकार को सीमित करने के तौर पर देख सकते हैं।

परिवर्तन प्रबंधन – एक जरूरत

ऊपर की गई चर्चा से दो बातें स्वतः स्पष्ट हैं – 1. परिवर्तन होना अवश्यंभावी है, 2. परिवर्तनों का विरोध होना भी अवश्यंभावी है। अतः यथोचित परिवर्तन का चयन और उसे लागू करना किसी भी संस्था के लिए एक बड़ा चुनौतीपूर्ण काम है। यदि परिवर्तन से पूरी संस्था प्रभावित होती हो या उसमें आमूलचूल परिवर्तन लाया जाना हो तो यह और भी चुनौतीपूर्ण काम बन जाता है। इसे देखते हुए यह आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी है कि परिवर्तन की प्रक्रिया को योजनाबद्ध ढंग से अंजाम दिया जाए और लोग उन्हें आसानी से स्वीकार कर लें। इस परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन प्रबंधन एक जरूरत बनकर उभरता है। इस पर विस्तार से चर्चा करने से पूर्व यह देखना उचित रहेगा कि परिवर्तन प्रबंधन क्या है।

परिवर्तन प्रबंधन – परिभाषा

आइए, परिवर्तन प्रबंधन को समझने के लिए निम्नलिखित परिभाषाओं पर नजर डालते हैं –

''परिवर्तन प्रबंधन व्यक्तियों, संस्थाओं और समूहों को परिवर्तन स्वीकार करने और उसके अनुकूल बनाने का एक सुव्यवस्थित तरीका है। इसमें परिवर्तन प्रबंधन हेतु प्रक्रियाओं और मॉडलों का प्रयोग शामिल है। ये मॉडल परिवर्तन लागू करने के संबंध में कर्मचारियों से जुड़े मुद्दों को सुलझाने का काम करते हैं।'' (एफ.गार्डनर)

''परिवर्तन प्रबंधन व्यक्तियों, समूहों और संस्थाओं को विद्यमान स्थिति से वांछित भावी स्थिति में ले जाने का सोचा–समझा तरीका है। यह संस्थागत प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य कर्मचारियों को उनके विद्यमान व्यावसायिक वातावरण में किए जा रहे परिवर्तनों को स्वीकार करने और उन्हें अपनाने में सहायता प्रदान करना है।''(विकीपीडिया)

''परिवर्तन प्रबंधन संस्था में परिवर्तन लाने के प्रयासों को नियंत्रित करने के लिए मूलभूत ढांचे और उपकरणों का इस्तेमाल करना है। परिवर्तन प्रबंधन का लक्ष्य कर्मचारियों पर पड़ने वाले प्रभाव को न्यूनतम करना तथा उन्हें घबराहट से बचाना है।'' (कोट्टर)

''किसी संस्था के लिए परिवर्तन प्रबंधन से तात्पर्य व्यावसायिक वातावरण में परिवर्तन लाने के लिए क्रियाविधियों तथा/अथवा प्रौद्योगिकी को परिभाषित करना और उसे लागू करने के साथ–साथ परिवर्तन से उत्पन्न अवसरों का लाभ उठाना है।'' (व्हाटइज.कॉम)

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि –

- परिवर्तन प्रबंधन एक सुव्यवस्थित तरीका है, जिसका प्रयोग संस्था में परिवर्तन लाने के संबंध में कर्मचारियों को तैयार करने और उन्हें अनावश्यक घबराहट से बचाने के लिए किया जाता है।
- इसका लक्ष्य कर्मचारियों को उनके विद्यमान व्यावसायिक वातावरण में किए जा रहे परिवर्तनों को स्वीकार करने और उन्हें अपनाने में सहायता प्रदान करना है।
- उक्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिए परिवर्तन से संबंधित क्रियाविधियों/प्रौद्योगिकी को परिभाषित करना और उन्हें लागू करना परिवर्तन प्रबंधन का अभिन्न अंग है।
- परिवर्तन प्रबंधन में ऐसी प्रक्रियाओं और मॉडलों का प्रयोग किया जाता है जिससे परिवर्तन के संबंध में कर्मचारियों से जुड़े मसलों को सुलझाया जा सके।

परिवर्तनों की पहचान

किसी भी संस्था में परिवर्तन प्रक्रिया की शुरुआत उन परिवर्तनों की पहचान से होती है, जिन्हें संस्था की प्रगति के लिए अनिवार्य समझा जाता है। सिर्फ परिवर्तन के लिए परिवर्तन करना न तो कोई संस्था चाहेगी और न ही वह उसके हित में होगा। संस्था के लिए परिवर्तन लाना निम्नलिखित कारणों से जरूरी हो सकता है –

- अपने वर्तमान उत्पाद/उत्पादों को उन्नत बनाने के लिए,
- उत्पाद/उत्पादों में विविधता लाने के लिए,
- नई प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए,
- अपने प्रतिस्पर्धियों के उत्पादों/नीतियों से आगे निकलने के लिए,
- सरकारी नीतियों/कानूनों में हुए परिवर्तन से तालमेल बिठाने के लिए,
- संस्थागत ढांचे को मजबूत बनाने के लिए,
- बढ़ती लागतों को कम करने के लिए,
- अपने क्षेत्र में हुए नए अनुसंधानों को अपनाने के लिए,
- कर्मचारी संघों के दवाबों से निपटने के लिए,
- कर्मचारियों/ग्राहकों/लेखा–परीक्षकों और जनता से प्राप्त अच्छे/लाभकारी सुझावों को अमल में लाने के लिए।

एक बार यह तय हो जाने के बाद कि किस उद्देश्य से कौन से परिवर्तन लाए जाने हैं, उन्हें लागू करने में सफलता सुनिश्चित करने हेतु निम्नलिखित कदम उठाए जाने जरूरी होंगे:

1. परिवर्तन हेतु मार्गदर्शन की प्रक्रिया को सुपरिभाषित करना,
2. परिवर्तन लाने के संबंध में एक नेतृत्व दल गठित करना,
3. परिवर्तन लागू करने में कर्मचारियों की सहभागिता सुनिश्चित करना।

परिवर्तन–आधार

किसी संस्था में परिवर्तन निम्नलिखित तत्वों पर आधारित होते हैं :

- **संस्था की भविष्य–दृष्टि या विज़न –** हर संस्था अपनी एक भविष्य–दृष्टि लेकर चलती है जो उसके भविष्य का निरूपण करती है। यह संस्था की प्रगति के लिए उसे अभिप्रेरित करती है और उसके लिए दिशा–निर्देशन का काम करती है।
- **ग्राहक संतुष्टि –** संस्था जो उत्पाद या सेवा प्रदान करती है, उससे उसके ग्राहक संतुष्ट हों और उनकी मांग में निरंतर वृद्धि होती रहे।
- **संस्था का ढांचा –** उसके क्रियाकलापों के अनुरूप हो। इसमें व्यवसाय के लिए उत्तरदायी प्रमुख व्यक्तियों की पहचान के साथ–साथ निर्णय लेने वाले प्राधिकारियों की सीमाओं का स्पष्ट निर्धारण शामिल है।

- **कार्य संबंधी प्रक्रियाएं –** कार्य–प्रक्रियाओं में यह ब्योरा निर्धारित होता है कि किसी संस्था में कार्य किस प्रकार किए जाते हैं।
- **कर्मचारी –** किसी भी संस्था के कार्यों को अंजाम देने के लिए हर स्तर पर कुशल/अकुशल कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। यह बहुत जरूरी होता है कि सही काम के लिए समय पर सही व्यक्ति उपलब्ध हो।
- **उपकरण –** इसमें सभी तरह की भौतिक सुविधाएं, मशीनें और अन्य उपस्करों के अलावा हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर प्रणालियां, नीतिगत दस्तावेज, क्रियाविधियां, मैन्युअल आदि शामिल हैं जो संस्था के कार्यों को अमली जामा पहनाने में सहायक होते हैं।

संस्थागत परिवर्तन की सफलता के लिए प्रारंभिक तैयारी

संस्था की प्रगति और प्रतिस्पर्धा में बने रहने की दृष्टि से किए जाने वाले परिवर्तन/परिवर्तनों की पहचान होने के बाद यह जरूरी है कि उन्हें लागू करने के लिए ऐसी प्रारंभिक तैयारी की जाए जिससे इस संबंध में किए जा रहे प्रयासों को गति मिल सके। इनमें निम्नलिखित को शामिल किया जा सकता है।

(i) वरिष्ठ प्रबंधकों की टीम का गठन – परिवर्तन लाने के लिए वरिष्ठ प्रबंधकों की एक टीम का गठन करना इसलिए जरूरी है कि उनके पद से जुड़े अधिकारों के साथ–साथ उनके अनुभवों का भी लाभ उठाया जा सके। यह टीम परिवर्तनों के प्रति सकारात्मक वातावरण बनाने में बहुत मदद कर सकती है। इसके लिए उन्हें परिवर्तनों की जरूरत और उसके महत्व का पूरा ज्ञान होना चाहिए और इसके लिए वे स्वयं अभिप्रेरित होने चाहिए। उनसे यह अपेक्षा की जा सकती है कि उन परिवर्तनों के पक्ष में वे एक स्वर से बोलें ताकि परिवर्तनों के विरोधियों का दृढ़तापूर्वक सामना किया जा सके। इस हेतु यह जरूरी होगा कि इस टीम को परिवर्तनों के निरूपण में शामिल किया जाए और उन्हें उत्तरदायित्व सौंपे जाएं।

(ii) परिवर्तनों को परिभाषित करना – इस संबंध में यदि अस्पष्टता होगी तो हर स्तर पर भ्रम उत्पन्न होगा। वरिष्ठ अधिकारियों से लेकर निचले स्तर तक के कर्मचारी परिवर्तनों को लेकर सशंकित रहेंगे और उनके विरोध में खड़े हो जाएंगे। अतः यह स्पष्ट किया जाना बहुत जरूरी है कि प्रस्तावित परिवर्तन क्या हैं, क्यों किए जा रहे हैं और कहां किए जा रहे हैं।

(iii) परिवर्तन हेतु सुव्यवस्थित कार्य–पद्धति अपनाना – संस्था के मूल्यांकन, परिवर्तन के निरूपण और उसे लागू करने, उसकी प्रगति पर निगरानी रखने तथा उसे कार्य रूप में परिणत करने के लिए सुव्यवस्थित कार्य–पद्धति अपनाई जानी होगी। ऐसी कार्यपद्धति के अभाव में परिवर्तनों को पूरी तरह लागू करना और उन्हें कायम रखना तो विपरीत रूप से प्रभावित होगा ही, स्टाफ के विरोध को भी बल मिलेगा।

परिवर्तन प्रबंधन हेतु कार्य–पद्धति

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, परिवर्तन हेतु एक सुव्यवस्थित कार्य–पद्धति अपनाना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। यह कार्य–पद्धति क्या हो, कैसी हो, इस संबंध में हेरोल्ड एस. रेसनिक का नीचे दिया गया मॉडल बहुत उपयुक्त प्रतीत होता है जिसमें उन्होंने दस विभिन्न चरणों का उल्लेख किया है। आइए देखें ये दस चरण कौन से हैं:

1. पहला चरण – परिवर्तन की बाध्यकारी आवश्यकता की पुष्टि

इस बात पर चर्चा की जानी आवश्यक होगी कि क्या ऐसी परिस्थितियां सचमुच मौजूद हैं जिनके कारण संस्था में या उसकी कार्यप्रणाली में परिवर्तन करना अवश्यंभावी हो गया है। क्या इसके परिणामस्वरूप संस्था में व्यापक परिवर्तन करने जरूरी हैं या फिर छोटे–मोटे परिवर्तनों से काम चल सकता है। इस निर्णय तक पहुंचने के लिए अक्सर बाजार में हिस्सेदारी, प्रतिस्पर्धी सूचना आदि जैसी बाहरी जानकारी और आंकड़ों के साथ–साथ वस्तुनिष्ठ आंतरिक सूचनाओं और आंकड़ों की आवश्यकता होती है। इस बात पर विचार किया

जाना होगा कि परियोजनाएं निर्धारित समय के भीतर पूरी कर ली जाती हैं या नहीं, उत्पादों/सेवाओं की प्रति इकाई लागतें बढ़ रही हैं या घट रही हैं, संस्था की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति कमजोर हो रही है या सुदृढ़ आदि। इन सभी बातों पर गंभीर चर्चा के बाद ही परिवर्तन की आवश्यकता की पुष्टि की जा सकेगी।

2. दूसरा चरण – सीमाओं की पहचान

जिन सीमाओं के भीतर परिवर्तन किए जाने हैं, उनकी पहचान की जानी भी जरूरी है। जब वरिष्ठ टीमें चर्चा शुरू करती हैं तो सामान्यतः बड़े मुद्दे तेजी से उभरते हैं जिनमें समामेलन, विलयन, बड़े पूंजी निवेश, अंतरराष्ट्रीय अथवा वैश्विक पहल, कूटनीतिक गठबंधन, इक्विटी की स्थिति जैसे विषय शामिल होते हैं। इन चर्चाओं के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है कि परिवर्तन किन क्षेत्रों में जरूरी हैं और किनमें नहीं।

3. तीसरा चरण – लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भविष्य–दृष्टि तय करना

संस्था जिन परिवर्तनों को लाना जरूरी समझती है, उन्हें प्राप्त करने के लिए उसकी प्रतिबद्धता पहली शर्त है। इस हेतु एक भविष्य–दृष्टि का सृजन ही सफलता सुनिश्चित कर सकता है। इस भविष्य–दृष्टि या विजन को पाने के लिए प्रतिबद्ध व्यक्तियों का समूह एक बहुत बड़ी शक्ति बन जाता है। उदाहरण के लिए, जॉन कैनेडी के इस विज़न ने नासा को अभूतपूर्व कार्य करने के लिए अभिप्रेरित कर दिया था कि दशक के अंत तक चंद्रमा पर मनुष्य के चरण पड़ जाने चाहिए।

4. चौथा चरण – स्थायी कार्य–प्रक्रियाएं विकसित करना

सुपरिभाषित कार्य–प्रक्रियाओं के अभाव में कोई भी संस्था अपने कार्यों को सही तरीके से अंजाम नहीं दे सकती और विश्वसनीयता उत्पन्न नहीं कर सकती। सुपरिभाषित कार्य–प्रक्रियाओं का अभाव विभिन्न कार्यों/व्यक्तियों और व्यक्ति समूहों के बीच भ्रम की स्थिति पैदा करता है जिनसे कार्य और हित विपरीत रूप से प्रभावित होते हैं। परिवर्तन लागू करने के मामले में भी यह बात उतनी ही सही है। परिवर्तन से संबंधित स्थायी कार्य–प्रक्रियाएं विकसित की जानी होंगी क्योंकि तदर्थ प्रक्रियाएं सिर्फ भ्रम और संदेह का ही वातावरण निर्मित करेंगी जिससे लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होगी। पूरी संस्था में निर्धारित प्रक्रियाएं लागू हों, यह देखने के लिए वरिष्ठ टीम के किसी एक सदस्य को जिम्मेदारी सौंपना बेहतर रहता है ताकि वह इन सब पर नियंत्रण स्थापित कर सके और परिवर्तन प्रक्रिया से जुड़े लोगों का मार्गदर्शन भी कर सके।

5. पांचवां चरण – बड़ी भूमिकाएं और उत्तरदायित्व निर्धारित करना

परिवर्तन के संबंध में जिन लोगों द्वारा बड़ी भूमिकाएं निभाई जानी हैं, उन्हें यह पता होना चाहिए कि उन्हें ये भूमिकाएं निभानी हैं। उन्हें उनकी भूमिका स्पष्ट रूप से बताई जानी चाहिए तथा उनसे की जाने वाली अपेक्षाएं और उनके उत्तरदायित्व स्पष्टतः तय किए जाने चाहिए ताकि इस संबंध में संदेह और भ्रम की कोई गुंजाइश न रहे।

6. छठा चरण – संस्थागत ढांचे में सुधार

अधिकांश परिवर्तन संस्थागत ढांचे में सुधार से शुरू होते हैं और दुर्भाग्यवश वहीं समाप्त हो जाते हैं और यही बात बड़े परिवर्तन लाने में असफलता का बड़ा कारण बन जाती है। अतः इस चरण में संस्थागत ढांचे का परीक्षण और उसमें अपेक्षित सुधार की उपयुक्तता और आवश्यकता पर विचार किया जाना होगा।

संस्थागत ढांचा संस्था के विज़न और उसकी कार्यनीति के अनुरूप होना चाहिए। यह देखा जाना होगा कि क्या यह ढांचा संस्था द्वारा किए जा रहे कामों को अंजाम देने, उसके लिए अपनाए जा रहे तरीकों और कर्मचारियों की अपेक्षाओं को पूरा करने में सहायक और सक्षम है? यदि नहीं तो उसकी पुनरीक्षा करके उसमें सुधार लाने होंगे और जरूरत होने पर उसमें आमूलचूल परिवर्तन किए जाने होंगे। वास्तव में यह

सुनिश्चित किया जाना होगा कि संस्था का वर्तमान ढांचा संस्था की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप है या नहीं। इसका उत्तर ''नहीं'' में होने पर उसमें सुधार के कदम तत्काल उठाए जाने होंगे क्योंकि इसके अभाव में संस्था के कार्यकलापों में किए जाने वाले परिवर्तनों का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा।

7. सातवां चरण – कार्यनिष्पादन की माप हेतु मानदंडों का निर्धारण

प्रत्येक संस्था अपने कार्यनिष्पादन का आकलन/मूल्यांकन करती है। लेकिन, अधिकांशतः इसमें वित्तीय मानदंडों पर जरूरत से ज्यादा ध्यान दिया जाता है। यह बात ध्यान देने की है कि वित्तीय पक्ष सीधे कार्यनिष्पादन से जुड़ा नहीं होता, बल्कि इस बात का परिणाम होता है कि संस्था का कार्यनिष्पादन ठीक रहा या नहीं। दूसरे, कार्यनिष्पादन के लिए जो मानदंड तय किए जाते हैं, वे संस्था के पिछले कार्यनिष्पादन की ओर इंगित करते हैं। जो कुछ हो चुका है, उसका सिर्फ पोस्टमार्टम ही किया जा सकता है, उससे संस्था को हो चुकी हानि या किसी अन्य परिणाम को बदला नहीं जा सकता। हां, उससे भविष्य के लिए मार्गदर्शन अवश्य प्राप्त किया जा सकता है। इसे देखते हुए संस्था में किए जाने वाले/किए जा रहे परिवर्तनों से संस्था के कार्यनिष्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन करने के लिए इस चरण में ऐसे मानदंड स्थापित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए जो वस्तुनिष्ठ हों, आंतरिक और बाहरी प्रभावों का आकलन करने में सक्षम हों और संस्था के समग्र कार्यनिष्पादन का ऐसा व्यापक दृश्य प्रस्तुत कर सकते हों जिससे परिवर्तनों के भावी परिणामों का अनुमान लगाया जा सके।

8. आठवां चरण – संस्था के प्रणालीगत उपकरणों की समीक्षा

कोई संस्था कैसे व्यवहार करती है, इसका पता लगाने के लिए उसमें प्रयुक्त प्रणालीगत उपकरण बहुत सहायक होते हैं। पुराने उपकरण प्रयुक्त करने वाली संस्था की सोच यथास्थितिवादी होती है। इससे उत्पन्न जड़ता को यदि नहीं तोड़ा गया तो संस्था अपने प्रतिस्पर्धियों की तुलना में पिछड़ती चली जाएगी और उसके बंद होने तक की नौबत आ सकती है। अतः इस चरण पर यह देखा जाना होगा कि संस्था के प्रणालीगत उपकरणों के उन्नयन या उन्हें बदलने की कितनी जरूरत है। संस्था के विज़न के अनुरूप इनमें किस प्रकार के परिवर्तन लाने जरूरी हैं। संस्था अपनी उत्पादकता बढ़ाना चाहे, अपने उत्पादों में विविधता लाना चाहे या उनमें बदलाव लाना चाहे, यह सफलतापूर्वक तभी किया जा सकता है जब उसके अनुरूप नए और आधुनिक उपकरण उपलब्ध करा दिए जाएं।

9. नौवां चरण – कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था

परिवर्तनों को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए यह अनिवार्य है कि संस्था अपने स्टाफ को मानसिक रूप से तैयार करे और उन्हें अपेक्षित कुशलता प्रदान करे। इसमें प्रशिक्षण की अहम् भूमिका होती है। इस चरण में यह देखा जाना होगा कि परिवर्तनों को आत्मसात करने के लिए कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए जरूरी व्यवस्था मौजूद है या नहीं। यदि नहीं, तो उसके लिए क्या व्यवस्था की जानी है।

यह चरण निम्नलिखित के परिप्रेक्ष्य में बहुत महत्वपूर्ण है:

- कर्मचारियों को परिवर्तनों से परिचित कराने के लिए,
- उन्हें परिवर्तनों के सकारात्मक परिणामों से अवगत कराने के लिए,
- परिवर्तित दशाओं में उनकी परिवर्तित भूमिकाओं से अवगत कराने के लिए,
- नई प्रक्रियाओं/क्रियाविधियों को समझकर उनका प्रयोग करने में सक्षम बनाने के लिए,
- नई प्रौद्योगिकी/मशीनों/उपस्करों का प्रयोग करने में सक्षम बनाने के लिए।

अतः परिवर्तन–प्रबंधन की प्रक्रिया में इसे अनिवार्यतः शामिल किया जाना होगा।

10. दसवां चरण – कर्मचारियों को पुरस्कृत करने की प्रणाली को सुसंगत बनाना

हमने ऊपर इस बात पर विस्तार से चर्चा की है कि संस्था में किसी भी छोटे या बड़े परिवर्तन का विरोध कर्मचारियों द्वारा अनिवार्यतः किया जाता है। यह विरोध परिवर्तनों को लागू करने के मार्ग में सबसे बड़ा व्यवधान बनकर सामने आता है। अतः परिवर्तन प्रबंधन की कार्य–पद्धति में इस विरोध को समाप्त करने या न्यूनतम करने को अपेक्षित महत्व दिया जाना होगा। इस दृष्टि से यह चरण बहुत महत्व रखता है, जिसमें कर्मचारियों को उनके कार्यनिष्पादन के आधार पर पुरस्कृत करने की प्रणाली को इस प्रकार सुसंगत बनाया जाता है कि वे परिवर्तनों को स्वीकार करने के लिए और उन्हें लागू करने में सहयोग करने के लिए आसानी से तैयार हो जाएं।

हर संस्था अपने कर्मचारियों को अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान देने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए विविध तरीके अपनाती है जिनमें बोनस, वेतनवृद्धि, लाभ में सहभागिता, बिक्री पर कमीशन, शेयर आबंटन आदि शामिल हैं। पुरस्कार प्रणालियों को यथासंभव वांछित परिवर्तनों से जोड़कर कर्मचारियों को परिवर्तन–प्रक्रिया में शामिल किया जा सकता है। अतः इस बात पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है कि पुरस्कार प्रणालियों में इस प्रकार के समायोजन परिवर्तनों के वांछित प्रभावों और व्यवहारों पर केंद्रित हों।

इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि इस चरण में पुरस्कार प्रणालियों को वांछित परिवर्तनों से जोड़कर कर्मचारियों को इस प्रकार अभिप्रेरित करने की व्यवस्था की जानी चाहिए कि वे स्वतः स्फूर्त रूप से परिवर्तनों को स्वीकार करने और उन्हें लागू करने में सहयोग के लिए तत्पर हो जाएं।

संक्षेप में, परिवर्तन प्रबंधन परिवर्तन के लिए योजना बनाना और उसे सही तरीके से व्यवहार में लाना है। इसके लिए योजना बनाते समय जिन महत्वपूर्ण बातों पर विचार किया जाना जरूरी है, वे हैं – परिवर्तन क्यों अपेक्षित है, कौन सा परिवर्तन अपेक्षित है, उसे/उन्हें लागू करने में संस्था के कौन से मूल्य और उद्देश्य निहित हैं, उनका विरोध किनके द्वारा और क्यों किया जाएगा, इस विरोध को कैसे समाप्त या न्यूनतम किया जा सकता है, परिवर्तनों की शुरुआत कैसे की जाए, उनसे प्रभावित लोगों को कैसे परिवर्तन–प्रक्रिया से जोड़ा जाए, बाहरी लोगों की सहायता कितनी और कैसे ली जाए तथा कार्यनिष्पादन का मूल्यांकन कैसे किया जाए। चूंकि विभिन्न कारणों से हर संस्था में परिवर्तन अपरिहार्य होते हैं, अतः उन्हें सही रूप में लागू किए जाने हेतु परिवर्तन प्रबंधन की अहम् भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

❍❍❍

भारतीय रिज़र्व बैंक की नीतिगत दरें *

बैंक दर	:	10.25 प्रतिशत
रेपो दर	:	7.25 प्रतिशत
रिवर्स रेपो दर	:	6.25 प्रतिशत
आरक्षित अनुपात *		
आरक्षित नकदी निधि अनुपात (सीआरआर)	:	4.00 प्रतिशत
सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर)	:	23.0 प्रतिशत

* 18 जुलाई 2013 को।

भारत में पर्दाफाशकर्ता (विसलब्लोअर) का संरक्षण – एक अधूरी शुरुआत

परवेज़ अख्तर
उप महाप्रबंधक (विधि), सतर्कता उद्भाग
भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक, लखनऊ

भ्रष्टाचार एक सामाजिक बुराई है जो राष्ट्र के संतुलित व आर्थिक विकास में बाधक है। ऐसा माना जाता है सरकारी/सार्वजनिक उपक्रमों में व्याप्त भ्रष्टाचार के कम न होने का सबसे बड़ा कारण ऐसे परिवादी/विसलब्लोअर को, जो कि भ्रष्टाचार, अनैतिक गतिविधियों, अधिकारियों द्वारा शक्ति या विवेक के दुरुपयोग का भंडाफोड़ करते हैं, समुचित संरक्षण न मिल पाना है। सरकारी/सार्वजनिक उपक्रमों में भ्रष्टाचार के चलते सरकार को भारी क्षति उठानी पड़ती है।

विसलब्लोअर की पृष्ठभूमि

आम बोलचाल की भाषा में विसलब्लोअर का शाब्दिक अर्थ है ''सीटी बजाने वाला'' परंतु यदि इस शब्द को भ्रष्टाचार से लड़ने के उपायों के रूप में देखें तो इस शब्द का अर्थ ''असहमति जताने वाला या पर्दाफाश करने वाला'' होता है। Redding [1995] तथा Kassing [1997] के अनुसार विसलब्लोअर वह व्यक्ति होता है जो जनता के हित में अपनी संस्था, जिसमें वह कार्यरत है, या किसी अन्य संस्था/संगठन में चल रही किसी भी तरह की भ्रष्ट, अवैध तथा धोखाधड़ी से संबंधित गतिविधियों को सार्वजनिक रूप से उजागर करता है। चूंकि विसलब्लोअर संस्था में चल रही अनैतिक, भ्रष्ट, अवैध तथा धोखाधड़ी से संबंधित गतिविधियों को सार्वजनिक रूप से उजागर करता है, अतः ऐसा व्यक्ति न केवल अपनी संस्था से बहिष्कृत हो जाता है बल्कि विरोधी उसके विरुद्ध षड्यंत्र कर उसकी जान व माल को क्षति पहुंचाने का प्रयास करने लगते हैं।

विश्व में विसलब्लोअर से संबंधित कानूनों पर यदि हम नज़र डालें तो सबसे पहले अमेरिका में वर्ष 1863 में यूनाइटेड स्टेट्स फॉल्स क्लेम्स एक्ट, 1863 (जिसको लिंकन्स ला के नाम से जाना जाता है) अधिनियमित किया गया था जो सिविल वार उत्पादकों/आपूर्तिकर्ताओं के कदाचार/भ्रष्टाचार को रोकने तथा दोषी पाए जाने पर उन्हें दंडित करने के लिए बनाया गया था। सिविल वार के दौरान कुछ भ्रष्ट उत्पादक/आपूर्तिकर्ता यूनियन आर्मी को मिलावटी वस्तुएं जैसे कि दोषपूर्ण राइफलें, बीमार खच्चर/घोड़े, मिलावटी गोला–बारूद तथा बासी अनाज/खाद्य वस्तुओं की आपूर्ति किया करते थे। कोई भी व्यक्ति इन भ्रष्ट उत्पादकों के दावों के विरुद्ध सरकार की ओर से दावा दायर कर इन्हें अवैध घोषित करा सकता था और इसके एवज में वह इन दावों का कुछ प्रतिशत (जो लगभग 15–20% होता था) सरकार से मांग सकता था। विकीपीडिया पर उपलब्ध जानकारी के अनुसार यह अधिनियम, कुछ संशोधनों के बाद, आज भी अमेरिका में लागू है।

विश्व के अन्य देशों में विसलब्लोअर के संरक्षण हेतु कड़े कानून कई वर्ष पहले ही बनाए जा चुके हैं। जैसे कि यूनाइटेड किंगडम (U.K.) में Public Interests Disclosure Act, 1998, आस्ट्रेलिया में Public Services Act, 1999, जापान और कोरिया में Unfair Competition Prevention Law, 2004 कानून मौजूद हैं जो भ्रष्टाचार रोकने के साथ–साथ विसलब्लोअर को संरक्षण भी प्रदान करते हैं।

भारत में विसलब्लोअर का संरक्षण

भारत में विसलब्लोअर के संरक्षण के लिए तत्कालीन मुख्य सतर्कता आयुक्त श्री एन. विट्ठल ने वर्ष 1993 में एक बिल प्रस्तुत किया था। इसी बीच, वर्ष 2001 में विधि आयोग ने पब्लिक इंट्रेस्ट डिसक्लोज़र बिल के मसौदे को तत्कालीन विधि मंत्री को प्रस्तुत कर अपनी संस्तुति में कहा कि भ्रष्टाचार को कम करने

के लिए विसलब्लोअर का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। इसी क्रम में पब्लिक इंटरेस्ट डिसक्लोज़र (प्रोटेक्शन आफ इन्फार्मर्स) बिल 2002 संसद द्वारा पारित किया गया। वर्ष 2003 में भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर करने में सत्येंद्र दुबे नामक इंजीनियर की हत्या तथा मामले के मीडिया में ज़ोर–शोर से उछलने के बाद माननीय उच्चतम न्यायालय ने वर्ष 2004 में एक लोक हित याचिका (सिविल रिट याचिका सं. 539/2003) में यह निर्देश जारी किया कि जब तक विसलब्लोअर के संरक्षण के लिए प्रभावी कानून नहीं बन जाता तब तक भारत सरकार एक ऐसी मशीनरी/तंत्र स्थापित करे जो विसलब्लोअर द्वारा परिवाद में उठाए गए मुद्दों पर न केवल गहनता से विचार/जांच कर कार्रवाई कर सके बल्कि उन्हें समुचित संरक्षण भी प्रदान कर सके।

इस संबंध में भारत सरकार ने दिनांक 21 अप्रैल 2004 को एक संकल्प पारित कर इसको शासकीय गजट में अधिसूचित किया। इस संकल्प में अन्य बातों के साथ–साथ यह प्रावधानित किया कि:

1. विसलब्लोअर की पहचान गुप्त रखी जाएगी;
2. केंद्रीय सतर्कता आयोग को केंद्र सरकार अथवा केंद्रीय अधिनियमों के अंतर्गत स्थापित संस्थानों के किसी कर्मचारी पर भ्रष्टाचार अथवा पद के दुरुपयोग के संबंध में प्राप्त लिखित शिकायतों पर कार्रवाई करने का अधिकार होगा;
3. शासकीय गुप्त अधिनियम, 1923 में विहित किसी बात के बावजूद कोई लोक सेवक अभिकरण को लिखित प्रकटीकरण/शिकायत भेज सकता है;
4. पूर्ण जांच पड़ताल करने हेतु संबंधित संगठन से जानकारी प्राप्त करने के लिए केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो अथवा पुलिस अधिकारियों को प्राधिकृत किया जाएगा;
5. संसद द्वारा इस विषय पर कानून बनाए जाने तक यह तंत्र प्रभावी रहेगा।

वर्ष 2007 में द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि एक ऐसा विशिष्ट कानून बनाए जाने की आवश्यकता है जो विसलब्लोअर को विधिवत संरक्षण प्रदान कर सके। इन तमाम अनुशंसाओं, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों तथा माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए एक नया बिल सार्वजनिक हित प्रकटीकरण तथा प्रकटीकरण से संबंधित व्यक्तियों का संरक्षण बिल, 2010 या विसलब्लोअर संरक्षण बिल, 2010 (Public Interest Disclosure and Protection to Persons Making the Disclosure Bill, 2010, or the Whistle-blowers Protection Bill, 2010) लोक सभा में प्रस्तुत किया गया। यह बिल लोकसभा द्वारा कुछ संशोधनों के साथ दिनांक 27 दिसंबर 2011 को पारित कर दिया गया। यह बिल राज्य सभा में 29 मार्च 2012 को प्रस्तुत किया गया परंतु लंबी बहस के बावजूद यह बिल पारित न हो सका। इसी बीच, भारत ने वर्ष 2005 में हस्ताक्षरित भ्रष्टाचार के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन का अनुसमर्थन मई 2011 में कर दिया। इस कन्वेंशन के अनुसार अनुसमर्थक देश भ्रष्टाचार को जड़ से समाप्त करने के लिए कड़े कानून बनाएंगे।

विसलब्लोअर संरक्षण विधेयक, 2011 की मुख्य विशेषताएं

विसलब्लोअर संरक्षण विधेयक का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे तंत्र की स्थापना करना है जिसके माध्यम से किसी लोक सेवक के विरुद्ध भ्रष्टाचार, अनैतिक गतिविधियों, शक्ति या विवेक के दुरुपयोग के प्रकटीकरण से संबंधित शिकायतों को प्राप्त करना, उनकी जांच करना, पूछताछ करना व विसलब्लोअर को ऐसे प्रकटीकरण के विरुद्ध समुचित संरक्षण प्रदान करना संभव हो सके। यह विधेयक 30 धाराओं तथा 7 अध्यायों में विभाजित है।

1. पहला अध्याय विधेयक में उल्लिखित मुख्य परिभाषाओं जैसे कि सक्षम प्राधिकारी, प्रकटीकरण और लोक सेवक आदि को परिभाषित करता है।
2. दूसरे अध्याय में सार्वजनिक हित प्रकटीकरण की आवश्यकताओं तथा इसके अपवादों का उल्लेख किया गया है। इस अध्याय में यह भी दिया गया है कि गुमनाम या छद्मनामी शिकायतों, चाहे उसमें कितना भी महत्वपूर्ण प्रकटीकरण किया गया हो, पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।
3. तीसरे व चौथे अध्याय में उन तरीकों का विवरण दिया गया है जिनके अंतर्गत पूछताछ, छानबीन तथा जांच की जाएगी। इस अध्याय में यह भी कहा गया है कि प्रकटीकरण करने वाले व्यक्ति की पहचान अतिगोपनीय रखी जाएगी परंतु यदि आवश्यक हुआ तो यह पहचान विभाग या

संगठन प्रमुख को ही दी जाएगी। विभाग या संगठन प्रमुख का यह दायित्व होगा कि वह प्रकटीकरण करने वाले व्यक्ति की पहचान अतिगोपनीय रखे। सक्षम प्राधिकारी पूर्व में बंद किसी भी मामले को पुनः खोल सकता है या जांच–पड़ताल में कोई तथ्य/सार न मिलने पर शिकायत को बंद कर सकता है। प्रकटीकरण की समय–सीमा को 5 वर्ष से बढ़ाकर 7 वर्ष करना है।

4. पांचवें अध्याय में प्रकटीकरण के चलते विसलब्लोअर को जुल्म (Victimization) से बचाने से संबधित प्रावधानों का उल्लेख किया गया है। सक्षम प्राधिकारी विसलब्लोअर से इस संबंध में आवेदन प्राप्त करने के पश्चात संबंधित अधिकारियों को विसलब्लोअर के समुचित संरक्षण तथा जुल्म (Victimization) रोकने हेतु दिशा–निर्देश दे सकता है।

5. छठे अध्याय में विभिन्न अपराधों, जिसमें कि तुच्छ प्रकटीकरण (frivolous disclosure) भी शामिल है, के लिए 2 वर्षों के कारावास व ₹ 30,000/– तक दंड और विसलब्लोअर की पहचान उजागर करने वाले व्यक्ति को 5 वर्षों के कारावास व ₹ 50,000/– तक के दंड का प्रावधान किया गया है। केंद्रीय सतर्कता आयोग (Central Vigilance Commission) को इस बिल में सिविल न्यायालय जैसी शक्तियां प्रदान की गई हैं जैसे कि किसी भी व्यक्ति को मामले में गवाही के लिए बुलाना, किसी भी दस्तावेज़ को पेश करने का निर्देश देना तथा किसी गवाह का परीक्षण करने के लिए कमिश्नर नियुक्त करना आदि।

विसलब्लोअर संरक्षण विधेयक, 2011 की कुछ प्रमुख खामियां

1. यद्यपि विधेयक का ताना बाना विसलब्लोअर के संरक्षण के लिए बुना गया है परंतु यह अजीब है कि यह विधेयक विसलब्लोअर जैसे शब्द को मान्यता ही नहीं देता;

2. यह विधेयक विसलब्लोअर के संरक्षण हेतु प्रस्तावित है परंतु आश्चर्यजनक रूप से धारा 10(1) में गर्भित संदर्भ को छोड़कर, विसलब्लोअर पर जुल्म (Victimization) से संबंधित परिभाषा का विधेयक में कहीं उल्लेख नहीं किया गया है;

3. विसलब्लोअर विधेयक में प्रकटीकरण की परिभाषा काफी संकुचित है और सरकारी कर्मचारी के उपेक्षापूर्ण कृत्यों व चूकों को इसमें शामिल नहीं किया गया है;

4. गुमनाम या छद्मनाम शिकायतों पर कोई कार्रवाई नहीं होगी भले ही उस शिकायत से किसी बड़े घोटाले का प्रकटीकरण हो रहा हो;

5. तुच्छ प्रकटीकरण के लिए दंड का प्रावधान होने से छोटे स्तर के भ्रष्टाचार का खुलासा करने वाले विसलब्लोअर हतोत्साहित होंगे। यह महत्वपूर्ण है कि तुच्छ प्रकटीकरण को विधेयक में कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है;

6. इस विधेयक में विसलब्लोअर के लिए किसी इनाम की व्यवस्था नहीं की गई है यद्यपि संसद की स्थायी समिति ने इस संबध में अपनी सिफारिश की थी;

7. विसलब्लोअर के संरक्षण के लिए संकल्प में दिए गए प्रावधान आज की परिस्थितियों को देखते हुए अपर्याप्त हैं। इसके अतिरिक्त, महिला विसलब्लोअर संरक्षण के लिए और कड़े प्रावधान बनाने की आवश्यकता है;

8. प्रकटीकरण की समय–सीमा को 5 वर्ष से बढ़ाकर 7 वर्ष किया जाना प्रस्तावित है परंतु यह बढ़ी सीमा सार्वजनिक हित विशेषकर राष्ट्रीय सुरक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा और रोज़गार से संबंधित मामलों में घोर लापरवाही बरतने जैसे प्रकरणों के लिए अपर्याप्त है।

समय–समय पर आवश्यक नियम/अधिनियम जैसे कि भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1988 (संशोधन प्रस्तावित), धनशोधन निवारण अधिनियम, 2002 बनाकर भ्रष्टाचार से निपटने के भरसक प्रयास किए गए हैं, परंतु भ्रष्टाचार के विभिन्न स्वरूपों को देखते हुए ये प्रयास ऊंट के मुंह में जीरा जैसी कहावत को चरितार्थ करते प्रतीत होते हैं। अतः भ्रष्टाचार जैसी बीमारी से और अधिक गंभीरता से निपटने के लिए न केवल सार्थक प्रयास बल्कि विसलब्लोअर संरक्षण अधिनियम जैसे वैधानिक प्रावधानों से सुसज्जित नियम/अधिनियम बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि विसलब्लोअर अपने आप को सुरक्षित महसूस कर सार्वजनिक हित में घोटालों का भंडाफोड़ कर सकें और राष्ट्र की उन्नति में सक्रिय रूप से सहयोग कर सकें।

❍❍❍

भारतीय रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति – मुद्रास्फीति और संवृद्धि दर में तालमेल का प्रयास

आर. एस. तिवारी
प्रबंधक, भारतीय रिज़र्व बैंक
कानपुर

भारतीय रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति का भारत की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय रिज़र्व बैंक वार्षिक आधार पर मौद्रिक नीति वक्तव्य जारी करता है और उसकी तिमाही व अर्ध तिमाही आधार पर समीक्षा (मौद्रिक नीति) जारी करता है। भारत ही नहीं, बल्कि दुनिया भर के अर्थशास्त्री, जिनकी भारतीय अर्थव्यवस्था में रुचि है, भारतीय रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति का बेसब्री से इंतजार करते हैं। हाल के वर्षों में भारतीय रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति का महत्व और भी बढ़ गया है। तमाम अर्थशास्त्री देश में तेज आर्थिक विकास के लिए ब्याज दरों में कमी की वकालत करते हैं जबकि भारतीय रिज़र्व बैंक ने संवृद्धि दर को नज़रअंदाज नहीं किया है लेकिन उसने दोहरे अंकों में जारी मुद्रास्फीति (महंगाई) दर को काबू में रखने को प्राथमिकता दी है।

वास्तव में भारतीय अर्थव्यवस्था आज एक अजीब मुकाम पर खड़ी है। एक ओर भारत में तेज आर्थिक उन्नति के लिए संवृद्धि दर में तेजी की जरूरत है, वहीं दूसरी ओर पिछले तीन–चार वर्षों से भारत को लगातार उच्च मुद्रास्फीति दर का सामना भी करना पड़ रहा है। अधिकांश विकसित देशों में मुद्रास्फीति न्यूनतम स्तर पर बनी हुई है, वहीं भारत में पिछले तीन–चार वर्षों से उच्च मुद्रास्फीति दर चिंता का कारण बनी हुई है। वर्ष 2011 में लगभग पूरे समय मुद्रास्फीति की दर 9 प्रतिशत के ऊपर बनी रही। खुदरा मुद्रास्फीति 2012–13 में औसतन 10.2 प्रतिशत रही जबकि थोक मुद्रास्फीति मार्च 2013 में 6 प्रतिशत रही, जोकि पिछले तीन सालों में सबसे कम है। भारत सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक के प्रयासों से मुद्रास्फीति की दर में कमी आ रही है। लेकिन दोनों सुविधा की स्थिति में हैं। यदि संवृद्धि दर को बढ़ाने की दृष्टि से ब्याज दरों में कमी की जाती है तो मुद्रास्फीति की रफ्तार तेज हो जाती है और यदि मुद्रास्फीति को कम करने के लिए ब्याज दरों को बढ़ाया जाता है तो आर्थिक विकास की दर धीमी पड़ जाती है। बढ़ती महंगाई की मार से भारत का मध्यम और गरीब वर्ग सबसे अधिक पीड़ित है। समाज के गरीब तबके को देश की तरक्की का पर्याप्त लाभ नहीं मिल पा रहा है। देश में अमीर–गरीब के बीच फासला बढ़ता जा रहा है। एक ओर अमीरों की संख्या में कुछ बढ़ोतरी हुई है लेकिन देश में गरीबों की संख्या में कोई कमी नजर नहीं आ रही है। लगातार उच्च मुद्रास्फीति ने भारत की चमकदार ''ग्रोथ स्टोरी'' और ''इंडिया शाइनिंग'' की तस्वीर को भी काफी हद तक फीका कर दिया है।

पिछले एक दशक से भारतीय अर्थव्यवस्था ने तेजी से उन्नति की है और चीन के बाद दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था बन गई। लेकिन इस दौरान ही भारत में उच्च मुद्रास्फीति (महंगाई) दर का दौर भी सामने आया। भारतीय रिज़र्व बैंक ने दो वर्षों के दौरान मौद्रिक नीति में ब्याज दरों में बढ़ोतरी करके महंगाई दर को काबू में रखने का प्रयास किया। इन कदमों से महंगाई पर कुछ हद तक अंकुश तो लगा लेकिन उच्च ब्याज दरों के कारण संवृद्धि दर धीमी पड़ने लगी। संवृद्धि दर 2010–11 में 9.3 प्रतिशत से 2011–12 में 6.2 प्रतिशत हो गई और 2012–13 में तो संवृद्धि दर मात्र 5 प्रतिशत ही रह गई जोकि पिछले दस वर्षों में भारत की सबसे धीमी संवृद्धि दर है। क्रेडिट रेटिंग एजेंसी एस एंड पी और फिच ने भारत में बढ़ती महंगाई और घटती संवृद्धि दर को भारत के लिए एक बड़ी चुनौती करार दिया है।

आर्थिक संवृद्धि के दो दशक

आजादी के बाद से ही भारत में विकास की गति धीमी रही और चार दशकों तक सामान्यतया 'हिन्दू वृद्धि दर' लगभग 3.5 प्रतिशत के आसपास ही बनी रही। 1991 में भारत का विदेशी

मुद्रा भंडार इतना कम हो गया था कि हमें अपना सोना विदेश में गिरवी रखना पड़ा था। वास्तव में 1991 को भारत के आर्थिक विकास की कहानी का सबसे महत्वपूर्ण साल कहा जा सकता है। उसी वर्ष देश में आर्थिक सुधारों के द्वार खुलने के साथ एक नए युग की शुरुआत हुई। नब्बे के दशक में संवृद्धि दर औसतन 5.7 प्रतिशत रही तो इसके बाद भारत ने विकास की तेज गति पकड़ी और तब से पीछे मुड़कर नहीं देखा।

पिछले दस वर्षों में भारत की संवृद्धि दर

वर्ष	संवृद्धि दर (प्रतिशत में)
2003–04	8.1
2004–05	7.0
2005–06	9.5
2006–07	9.6
2007–08	9.3
2008–09	6.7
2009–10	8.6
2010–11	9.3
2011–12	6.2
2012–13	5.0

- 2000–01 से 2009–10 के दशक में जीडीपी संवृद्धि दर और बढ़कर औसतन 7.3 प्रतिशत पर आ गई। 2008 के आर्थिक संकट के पूर्व के तीन वर्षों में संवृद्धि दर 9.5, 9.6 और 9.3 प्रतिशत की तेज रफ्तार से बढ़ी जोकि पूरी दुनिया में चीन के बाद सबसे अधिक संवृद्धि दर रही। आर्थिक संकट के बाद सबसे तेजी से रिकवरी दिखाने के मामले में भी भारत आगे रहा। 2008–09 में संवृद्धि दर 6.7 प्रतिशत गिरने के बाद संभलकर 2009–10 में 8.6 प्रतिशत और फिर 2010–11 में 9.3 प्रतिशत तक पहुँच गई।
- संवृद्धि के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था की तस्वीर भी लगातार बदल रही है। 1950–51 में भारतीय अर्थव्यवस्था काफी हद तक कृषि पर आधारित थी। सकल देशी उत्पाद में कृषि का योगदान 51 प्रतिशत तक था जबकि उद्योग व सेवा क्षेत्र का योगदान क्रमशः 11 और 34 प्रतिशत ही था। लेकिन बढ़ते औद्योगिक विकास के साथ अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान घटता गया और आज यह महज 15 प्रतिशत रह गया है जबकि अर्थव्यवस्था में उद्योग व सेवा क्षेत्र का योगदान लगभग दुगुना होकर क्रमशः 20 और 65 प्रतिशत तक जा पहुँचा है। अब हमारा देश एक कृषि प्रधान देश से एक औद्योगिक शक्ति के रूप में अपनी पहचान बना रहा है।
- तेज संवृद्धि दर के साथ ही भारत के विदेशी मुद्रा भंडार में भी तेजी से वृद्धि देखने को मिली है। 1991 में विदेशी मुद्रा भंडार महज 5.9 बिलियन डालर रह गया था। लेकिन आर्थिक सुधारों के साथ विदेशी मुद्रा भंडार तेजी से बढ़ा। आर्थिक सुधारों की शुरुआत के 12 वर्षों में विदेशी मुद्रा भंडार 2002 में 50 बिलियन डालर तक पहुँचा। 2004 में 100 बिलियन डालर तक और 2008 में 300 बिलियन डालर के पार पहुँच गया। नवंबर 2011 तक 305 बिलियन डालर के साथ विश्व में सर्वाधिक विदेशी मुद्रा भंडार रखने वाले देशों की सूची में चीन, यूरोपियन यूनियन, रूस, सऊदी अरब, ताइवान और ब्राजील के बाद भारत सातवें स्थान पर पहुँच गया। उसके बाद से ही हमारा विदेशी मुद्रा भंडार 300 बिलियन डालर के आसपास बना हुआ है।
- अंतरराष्ट्रीय व्यापार में भी भारत का योगदान लगातार बढ़ रहा है। आज भारत विश्व के अग्रणी निर्यातकों के मामले में 2008 के 27वें स्थान से 2009 में 22वें स्थान पर तथा आयात के मामले में 2008 में 16वें स्थान से 15वें स्थान पर पहुँच गया है। विश्व निर्यात में भारत की भागीदारी 1.2 प्रतिशत तथा आयात में 1.9 प्रतिशत हो गई है।

आज भी यूरोप के कई देशों यथा ग्रीस, इटली, पुर्तगाल आदि की आर्थिक स्थिति नाजुक बनी हुई है। अमेरिका में आर्थिक रिकवरी की रफ्तार धीमी ही बनी हुई है। यूरोप में आर्थिक संकट से अनेक देशों की अर्थव्यवस्था चरमरा रही है। भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी इसका असर दिखाई देने लगा है। लेकिन अर्थशास्त्रियों का मत है कि आर्थिक संकट का भारतीय अर्थव्यवस्था पर जो

असर पड़ रहा है वह देशी कारणों के मुकाबले विदेशी कारणों से अधिक है। भारत में घरेलू माँग काफी अधिक है इसलिए भारत अपनी घरेलू माँग के बलबूते ही फिर से अच्छी संवृद्धि दर हासिल कर सकता है।

मुद्रास्फीति में वृद्धि के कारण

किसी भी देश में एक संतुलित दर से मुद्रास्फीति में वृद्धि को विकास के लिए आवश्यक माना जाता है लेकिन भारत में पिछले कुछ वर्षों से मुद्रास्फीति की दर लगातार उच्च स्तर पर बनी हुई है। प्रारंभ में महंगाई दर में वृद्धि केवल खाद्य पदार्थों तक सीमित थी लेकिन मुद्रास्फीतिकारी प्रत्याशा के कारण धीरे–धीरे इसका असर संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर दिखाई देने लगा। अर्थशास्त्रियों के अनुसार भारत में उच्च मुद्रास्फीति के निम्नलिखित कारण हैं –

- भारत में उच्च मुद्रास्फीति का प्रमुख कारण माँग की अधिकता के साथ–साथ आपूर्ति में कमी का होना है।
- देश के ग्रामीण इलाकों में मनरेगा, भारत निर्माण आदि सरकारी योजनाओं के कारण ग्रामीणों की आय में तेजी से वृद्धि हुई है जिससे उनकी क्रय शक्ति बढ़ी है। इसके कारण वस्तुओं की माँग में जोरदार बढ़ोतरी देखने को मिली है।
- खाद्य पदार्थों विशेषकर प्रोटीनयुक्त पदार्थों जैसे अंडे, मांस, मछली के उपभोग में तेजी से वृद्धि हुई है जिसका कारण आम नागरिकों की आय में बढ़ोतरी होना माना जा रहा है।
- यूरोप में जारी आर्थिक संकट की वजह से विदेशी संस्थागत निवेशकों ने काफी मात्रा में भारत से अपना धन निकालना आरंभ कर दिया है जिससे भारतीय रुपये का मूल्यह्रास हुआ है। रुपये के मुकाबले अमेरिकी डॉलर महंगा होने से देश में आयात करना महंगा हो गया है।
- भारत अपनी जरूरत का 70 प्रतिशत कच्चा तेल का आयात करता है इसलिए भारत को बड़ी मात्रा में कच्चे तेल का आयात करना पड़ता है। हालाँकि अप्रैल 2013 से अंतरराष्ट्रीय बाजारों में कच्चे तेल की कीमतों में थोड़ी नरमी आई है लेकिन रुपये के मुकाबले अमेरिकी डॉलर महंगा होने से देश में कच्चे तेल के आयात पर खर्च कम नहीं हो रहा है।
- अंतरराष्ट्रीय बाजारों में खाद्यान्न की कीमतों में तेज उछाल आना।
- कमॉडिटी बाजार में लगातार तेजी जारी रहना। अप्रैल 2013 से अंतरराष्ट्रीय बाजारों में कमॉडिटी बाजार में भी थोड़ी नरमी आई है।

मुद्रास्फीति का अर्थव्यवस्था पर असर

मुद्रास्फीति की दर लगातार उच्च स्तर पर बनी रहने का भारतीय अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक असर पड़ा है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने मुद्रास्फीति को रोकने तथा मुद्रास्फीतिकारी प्रत्याशाओं को स्थिर करने के लिए मार्च 2010 से अक्तूबर 2011 के दौरान मौद्रिक नीति में ब्याज दरों में 375 आधार अंकों की बढ़ोतरी की। लगभग 20 महीनों के दौरान मौद्रिक नीति में की गई सख्ती का परिणाम यह हुआ कि भारतीय रिज़र्व बैंक मुद्रास्फीति को रोकने में तो कुछ हद तक सफल रहा लेकिन इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि देश में औद्योगिक विकास की रफ्तार भी लगातार धीमी होती गई और देश के अर्थशास्त्रियों ने देश में धीमी संवृद्धि दर के लिए काफी हद तक भारतीय रिज़र्व बैंक को जिम्मेदार ठहराना आरंभ कर दिया।

समस्या से उबरने के सुझाव

आज दुनिया में वैश्विक अर्थव्यवस्था का दौर है। प्रत्येक देश आर्थिक रूप से अन्य देशों पर निर्भर है। विश्व अर्थव्यवस्था में हो रही उठापटक से कोई भी देश अछूता नहीं है। यूरोप में संकट हो या अमेरिका में मंदी के हालात या फिर ईरान पर आर्थिक प्रतिबंध लगाने का मामला, हर आर्थिक गतिविधि प्रत्येक देश की आर्थिक नीतियों पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य डालती है। इन आर्थिक मसलों में कोई भी देश व्यक्तिगत रूप से कुछ खास नहीं कर सकता। लेकिन घरेलू मोर्चे पर ऐसे उपाय अवश्य किए जा सकते हैं ताकि देश में संवृद्धि की गति को तेज बनाए रखा जा सके। भारत में आर्थिक विकास के लिए कुछ कठोर निर्णय करने होंगे। मसलन संवृद्धि के लिए सिर्फ विदेशी निवेश पर निर्भर नहीं रहना होगा क्योंकि विदेशी निवेशकों का उद्देश्य सिर्फ लाभ कमाना होता है और संकट की घड़ी में वे सबसे पहले अपना धन निकालकर ले जाते हैं। 2008 और वर्तमान आर्थिक संकट से यह बात साबित भी हो चुकी है।

इसके बजाय सरकार को अपने घरेलू संसाधनों के विकास की रणनीति अपनानी होगी। अपने देश में संसाधनों की कोई कमी नहीं है। भौगोलिक रूप से भारत दुनिया का सातवाँ सबसे बड़ा देश है और 121 करोड़ के विशाल जनबल के साथ हम अपने देश के संसाधनों का बेहतर उपयोग करके देश की संवृद्धि की गति को बढ़ा सकते हैं।

देश के बहुमुखी विकास के लिए सरकार को विशेष रूप से तीन मोर्चों पर ध्यान देने की आवश्यकता है–

1. संवृद्धि दर को बढ़ाना,
2. महंगाई दर पर अंकुश,
3. व्यापार घाटे पर अंकुश।

संवृद्धि दर को बढ़ाना

- संवृद्धि दर में फिर से तेजी लाने के लिए सरकार को आर्थिक सुधारों में तेजी लानी होगी। जीएसटी लागू करना, सरकारी सब्सिडी में कमी तथा अनावश्यक सरकारी खर्च में कटौती करना आदि सरकार की प्राथमिकता में शामिल होना चाहिए।
- घटती संवृद्धि दर को रोकने के लिए केंद्रीय बैंक को ब्याज दरों में कुछ कमी करनी चाहिए ताकि कृषि एवं उद्योगों को सस्ती दरों पर वित्त सुविधा उपलब्ध हो सके।
- केंद्रीय बैंक द्वारा आरक्षित नकदी अनुपात (सीआरआर) में भी कुछ कटौती करनी चाहिए ताकि बैंकों का जो धन भारतीय रिज़र्व बैंक के पास बिना ब्याज के जमा है उसे वापस मिलने पर बैंकों के पास ऋण देने के लिए अधिक वित्त उपलब्ध हो सके।

महंगाई दर पर अंकुश

- देश में खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाकर ही खाद्य मुद्रास्फीति को नियंत्रण में रखा जा सकता है। सरकार को खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाने के लिए कृषि क्षेत्र में दूसरी हरित क्रांति की पहल करनी चाहिए।
- सरकार को संपूर्ण ग्रामीण विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में प्रयास करने चाहिए ताकि देश में दूध, माँस आदि का उत्पादन बढ़ाया जा सके तथा ग्रामीण लघु उद्योगों के विकास से ग्रामीण इलाकों में रोजगार के अवसर बढ़ सकें।
- उद्योगों के विकास के लिए उन्हें सस्ता ऋण उपलब्ध कराया जाए और नवीनतम तकनीक का प्रयोग करके उद्योगों का तीव्र गति से विकास किया जाए।

व्यापार घाटे पर अंकुश

- देश के निर्यात को बढ़ावा देना सरकार की प्राथमिकता में शामिल होना चाहिए। इसके लिए विशेष प्रोत्साहन योजनाएं जारी रखी जानी चाहिए। निर्यात से बहुमूल्य विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। साथ ही लाखों लोगों को रोजगार भी प्राप्त होता है।
- देश में भारी मात्रा में सोने का आयात हो रहा है जिससे व्यापार घाटा तेजी से बढ़ रहा है। सोने का आयात कम करने के लिए और सार्थक उपाय किए जाने चाहिए।
- विदेशों में रह रहे भारतीयों को भारत में विदेशी मुद्रा लाने और उसके निवेश को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इसके लिए एफसीएनआर (बी) खाते में जमा पर अधिक ब्याज दिया जाना चाहिए तथा भारत में निवेश के लिए विशेष योजनाएं आरंभ की जानी चाहिए।

आज अमेरिका व यूरोप के तमाम देशों में आर्थिक संकट व्याप्त है। इसका असर हमारी अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा है। इसके अलावा हमारा देश उच्च मुद्रास्फीति की मार से भी त्रस्त रहा है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने मई 2012 में अपनी वार्षिक मौद्रिक नीति की घोषणा करते हुए वर्ष 2013–14 में थोक मुद्रास्फीति दर 5.5 प्रतिशत रहने का अनुमान जताया है। पिछले दो महीनों में मुद्रास्फीति दर में आई गिरावट ने भारतीय रिज़र्व बैंक की चिंता को कुछ हद तक कम कर दिया है और अब भारतीय रिज़र्व बैंक ने ब्याज दरों में धीरे–धीरे कमी करना आरंभ कर दिया है। ब्याज दरों में कमी से देश में संवृद्धि की रफ्तार में फिर से तेजी आने की उम्मीद जगी है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने वर्ष 2013–14 में संवृद्धि दर 5.7 प्रतिशत रहने का अनुमान लगाया है। संपूर्ण विश्व में विषम आर्थिक परिस्थितियों को देखते हुए यह लक्ष्य हासिल करना मुश्किल अवश्य नजर आ रहा है लेकिन नामुमकिन नहीं है।

❍❍❍

आर्थिक विकास और पर्यावरण

संजय कुमार
सहायक प्रबंधक,
भारतीय रिज़र्व बैंक, कानपुर

आम तौर पर यह माना जाता है कि जैसे–जैसे किसी देश की आर्थिक गतिविधियों में बढ़ोतरी होती है या औद्योगीकरण रफ्तार पकड़ता है, पर्यावरण को इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है। पर ऐसा भी देखा गया है कि कभी–कभी औद्योगीकरण और मशीनीकरण से पर्यावरण की रक्षा भी हो जाती है। आज हम जिस दुनिया में जी रहे हैं, अगर उससे हजारों बरस पहले के मानवीय रहन–सहन पर नजर दौड़ाएं, तो हमें एक ऐसी दुनिया नजर आती है जहाँ लोगों की भागम–भाग वाली दिनचर्या कतई नहीं थी। तब का आदमी काफी सुकून में नजर आता है। हाँ, अगर कोई चिंता थी तो वह भरण–पोषण की थी क्योंकि पेट उसके पास तब भी था जैसा कि आज है। हर रोज उसका आधे से अधिक समय भोजन के बंदोबस्त में बीतता था। भोजन का जुगाड़ खेती और वनों से होता था। कालानुक्रम में वह आदिमानव खानाबदोश न होकर एक सभ्य समाज का नागरिक बन गया और मिट्टी के घरों में निवास करने लगा तथा पका–पकाया भोजन करने लगा। भोजन पकाने के लिए लकड़ी का इस्तेमाल होता था और लकड़ी की व्यवस्था पेड़ों की कटाई–छँटाई करके पूरी की जाती थी।

जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ने लगी, वैसे–वैसे भोजन और आवास की जरूरत भी बढ़ने लगी। ज्यादा पेटों के लिए ज्यादा भोजन पकाना पड़ता था। ज्यादा भोजन पकाने के लिए ज्यादा लकड़ी की आवश्यकता होती थी और इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए पहले से कहीं ज्यादा पेड़ काटने पड़ते थे। अधिक पेड़ कटने से जहाँ पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ने लगा, वहीं ज्यादा लकड़ी जलने से वायुमंडल में कार्बन–डाई–ऑक्साइड जैसी गैसें दिन–ब–दिन बढ़ने लगीं।

उन दिनों सीमेंट, सरिया जैसी निर्माण सामग्री की ईजाद नहीं हुई थी। लोग मिट्टी के घरों में रहते थे जिनकी छत, लिंटर, दरवाजा, किवाड़ों आदि के निर्माण में लकड़ी की काफी खपत होती थी और इसके लिए मोटे और सीधे तने वाले पेड़ों की कुर्बानी प्राथमिकता के आधार पर दी जाती थी। आवास की बढ़ती जरूरत ने इस प्रयोजन हेतु लकड़ी की आवश्यकता को और भी बढ़ा दिया जिसके कारण पेड़ों पर होने वाले हमले अब और भी धारदार हो गए थे।

मनुष्य सृष्टि की शुरुआत से ही अनुसंधानप्रिय प्राणी रहा है। अपनी खोजी प्रवृत्ति के कारण इस बीच उसने पत्थर के कोयले को ढूँढ़ निकाला। काठ के ईंधन के मुकाबले पत्थर के कोयले के प्रयोग के कई फायदे थे। एक तो इस तरह के कोयले में आँच बहुत तेज होती थी, जो न केवल भोजन को जल्दी पकाने में मदद करती थी अपितु औद्योगिक भट्ठियों के लिए भी यह बेहद उपयुक्त थी। दूसरे, कम जगह में ज्यादा ईंधन स्टोर हो जाता था। हालांकि, पत्थर के कोयले के प्रयोग से कार्बन–डाई–ऑक्साइड जैसी गैसों के उत्सर्जन में बहुत कमी नहीं आई, परंतु इसके चलते ईंधन के लिए पेड़ों की कटाई पर कुछ रोक जरूर लगी। पत्थर के कोयले की खोज के बाद बारी आई डीज़ल, किरासन जैसे तरल ईंधन की। इस तरह के तरल ईंधन से मनुष्य के लिए भोजन पकाना और आसान हो गया तथा धीरे–धीरे चूल्हे, अँगीठी की जगह स्टोव नजर आने लगे। स्टोव से होने वाला प्रदूषण लकड़ी अथवा कोयले के मुकाबले कम था और लोग अब छोटे–छोटे कमरों के अंदर भी भोजन पका सकते थे। हाँ, स्टोव जलने से थोड़ा ध्वनि प्रदूषण जरूर होता था। पर मनुष्य का अनुसंधान रूपी रथ यहीं नहीं रुका और उसने एलपीजी, एलएनजी, इलेक्ट्रिक हीटर, माइक्रोवेव, सोलर कुकर जैसी तमाम चीजें खोज डालीं जिनसे न केवल भोजन फटाफट तैयार करने में मदद मिली, अपितु प्रदूषण पर भी कारगर लगाम लगी।

अब जरा कल्पना करें कि यदि आज बिजली, एलपीजी, एलएनजी जैसी चीजों का आविष्कार न हुआ होता तो क्या हमारे जंगल देश की 125 करोड़ की आबादी की ईंधन की जरूरत को

पूरा कर पाते? मान लो यदि पूरा भी कर पाते, तो आखिर कितने दिनों तक? वर्ष 2010 में स्पेन के मैड्रिड शहर में आयोजित 'वर्ल्ड एलपीजी फोरम' की बैठक में प्रस्तुत आकड़ों के मुताबिक अमेरिका, चीन और जापान के बाद भारत दुनिया का चौथा सबसे बड़ा एलपीजी उपभोक्ता है। हमारे यहाँ 115 मिलियन से अधिक गैस कनेक्शन हैं और हर साल तकरीबन 900 मिलियन गैस सिलिंडरों की आपूर्ति होती है। अगर गैस से इतने अधिक चूल्हे/भट्टियाँ न जल रही होतीं तो न जाने कितनी लकड़ी अब तक स्वाहा हो चुकी होती। और इतनी लकड़ी के लिए न जाने कितने वन उजड़ गए होते और न जाने कितना प्रदूषण आसमान को आच्छादित कर चुका होता। उसी प्रकार, अगर आज भी मनुष्य मिट्टी के घरों में रह रहा होता और सीमेंट, सरिया, कंक्रीट, फाइबर जैसे पदार्थों को तैयार करने वाली बड़ी–बड़ी फैक्टरियाँ न लगी होतीं तो छत पाटने, लिंटर डालने अथवा गेट बनाने में न जाने कितने टन लकड़ी खप गई होती। और तो और, सीमेंट, सरिया, कंक्रीट के अभाव में बहुमंजिली इमारतों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। यदि बहुमंजिली इमारतें और फ्लैट सिस्टम न होता तो भारत की 125 करोड़ की आबादी को निवास करने के लिए बहुत अधिक जमीन की आवश्यकता पड़ती और यह आवश्यकता वनों को उजाड़े बगैर कतई पूरी नहीं होती।

एलपीजी, एलएनजी, सोलर अथवा इलेक्ट्रिक हीटर जैसी चीजों के आविष्कार से होने वाले फायदे केवल ईंधन की बचत अथवा पर्यावरण की रक्षा तक ही सीमित नहीं है। आज जो हम तरक्की की इबारत लिख रहे हैं, उसके पीछे भी तो कहीं न कहीं इन चीजों की भूमिका है। आज इन आधुनिक चीजों से भोजन पकाना कितना आसान हो गया है। पहले ऐसी कितनी महिलाएं थीं जो चूल्हा जलाना जानती थीं? उस युग में चूल्हा जलाना एक कला से कम न था। कुछ महिलाएं तो थोड़े से ईंधन में ज्यादा से ज्यादा भोजन पका लेती थीं, पर जिन्हें यह कला नहीं आती थी वे दुगुनी लकड़ी जलाने के बावजूद एक भी व्यंजन ठीक से नहीं पका पाती थीं। आँखें धुएं से लाल और हाल बेहाल अलग से हो जाते थे। उन दिनों कपड़ों में आग पकड़ लेना अथवा घर में आग लग जाना भी आम बात थी। परंतु गैस के प्रयोग से जो सबसे बड़ा फायदा हुआ, वह था समय की बचत। मानव श्रम के वे अनगिनत घंटे बच गए जो परंपरागत चूल्हे पर भोजन पकाने, लकड़ी का बंदोबस्त करने और जले–काले बर्तनों को साफ करने में खप जाते थे। किचन में गैस आ जाने से जहाँ हर साल कोयले जैसी दीवारों की रँगाई–पुताई पर होने वाले धन–श्रम के खर्च में खासी बचत हुई, वहीं दमा के उन मरीजों को राहत मिली जिन्हें धुएं से एलर्जी थी।

मशीनीकरण और उससे पर्यावरण को होने वाला फायदा केवल किचन या घर की चारदीवारी तक ही सीमित न था। कई अन्य क्षेत्रों में भी तकनीक के नित नए प्रयोगों से पर्यावरण को होने वाले नुकसान में कमी आई। रेल गाड़ियाँ जो पहले कोयले के इंजन से चलती थीं और अपने राक्षसी मुख से अनाप–शनाप कार्बन उगलती थीं, वे भी, डीज़ल इंजन से होते हुए अब इलेक्ट्रिक इंजन के नए अवतार में हमारे सामने हैं। इलेक्ट्रिक इंजन पहले के इंजनों के मुकाबले पावरफुल तो है ही, साथ ही, इससे वायुमंडल में प्रदूषण भी नहीं फैलता।

अब एक सवाल उठता है कि आखिर बिजली बनाने में भी तो प्रदूषण होता है। थर्मल स्टेशन की चिमनियाँ भी तो आसमान में जहरीली गैसें उंडेलती हैं। यह सही है कि बिजली बनाने, खासकर थर्मल पावर में प्रदूषण अधिक होता है। परंतु यह प्रदूषण उस प्रदूषण से कई गुना कम होता है जो बिजली के बगैर हो जाता। मिसाल के तौर पर पहले सर्दियों से बचाव के लिए टनों लकड़ी जला दी जाती थी, पर अब यह काम हीटर, ब्लोवर, गीजर बखूबी पूरा कर देते हैं।

हमारे खयाल में, जैसे–जैसे किसी देश का आर्थिक विकास होता है, वैसे–वैसे वहाँ नई–नई मशीनों एवं तकनीक की ईजाद होती है जो ईंधन के प्रयोग में किफायती और पर्यावरण के लिए तुलनात्मक रूप से हितैषी भी होती हैं। मिसाल के तौर पर महानगरों में कुछ साल पहले तक आंतरिक परिवहन हेतु नगर बसों की भरमार थी। ये बसें डीजल से चलती थीं और चारों ओर प्रचुर मात्रा में प्रदूषण फैलाती थीं। क्रमशः सीएनजी का आगमन हुआ और वायु प्रदूषण पर कुछ लगाम लगी। पर बसों के हार्न आदि से ध्वनि प्रदूषण अभी भी बदस्तूर जारी था। धीरे–धीरे मेट्रो ट्रेन्स चलन में आईं, जिससे लोगों को न केवल ध्वनि प्रदूषण से निज़ात मिली, अपितु यात्रा की अवधि में भी उल्लेखनीय कमी आई। परंतु यह सच्चाई है कि जो विकसित देश हैं अथवा जो देश तेजी से विकास कर रहे हैं, वहाँ प्रदूषण का स्तर बढ़ रहा है। पर सिर्फ तीव्र विकास ही पर्यावरण की क्षति के लिए जिम्मेदार नहीं है। मेरा मानना है कि मनुष्य की विलासितापूर्ण जिंदगी इसके लिए कहीं अधिक जिम्मेदार है। और यह जिन्दगी आमदनी बढ़ने से स्वतः शुरू हो जाती है। आज उच्च आय वर्ग के परिवारों का हर सदस्य अपनी अलग कार रखना चाहता है। कई बार तो एक नहीं, बल्कि गाड़ियों का पूरा काफिला रखना चाहता है। सार्वजनिक

परिवहन व्यवस्था यदि दुरुस्त नहीं है और लोगों को अपने वाहन से चलने पर शान–शौकत का अहसास हो, तो सड़क पर कारें तो बढ़ेंगी ही। और फिर वे जहर नहीं तो क्या आक्सीजन उगलेंगी? विलासितापूर्ण जिंदगी की दूसरी मिसाल आज घरों को फर्नीचर से सजाने की बढ़ती सनक भी है। फर्नीचर की बढ़ती जरूरत ने न जाने कितने पेड़ों की कुर्बानी ली है।

मेरा मानना है कि पर्यावरण को अगर किसी वजह से सबसे बड़ी क्षति पहुँच रही है तो वह है जनसंख्या वृद्धि। क्योंकि जनसंख्या बढ़ने के साथ–साथ घर–मकान, वाहन–गाड़ी, एसी, रेफ्रिजरेटर आदि की जरूरत स्वतः बढ़ने लगती है। फिर आज मकान केवल जीवन की मूलभूत आवश्यकता ही नहीं है, बल्कि निवेश का एक उम्दा विकल्प भी है। इसके चलते ज्यादा मकान बनाए जा रहे हैं और इन मकानों के लिए खेतिहर अथवा जंगली जमीन हथियाई जा रही है।

अगर आज भी हमारी जनसंख्या उतनी होती, जितनी कि हजार साल पहले थी, तो शायद हमारा पर्यावरण अधिक स्वस्थ होता। मनुष्य अगर 'हम दो, हमारे दो' की नीति पर चला होता तो प्रकृति की झोली कभी खाली न हुई होती और न ही उसके दामन पर प्रदूषण रूपी दाग ही पड़ते। अतः आर्थिक विकास या औद्योगीकरण से पर्यावरण को उतना खतरा नहीं है जितना कि जनसंख्या वृद्धि से है। हमें जनसंख्या नियंत्रित करनी चाहिए। अगर जनसंख्या नियंत्रित करना संभव न हो तो उसका लोभ नियंत्रित करना चाहिए। लोभ भी यदि नियंत्रित न हो सके तो उसकी पूर्ति की खातिर हमें ऐसे साधनों का चयन करना चाहिए जो पर्यावरण हितैषी हों। मिसाल के तौर पर अब से करीब 25–30 बरस पहले दैनिक उपयोग में पालीथीन बैग का चलन कोई खास न था। लोग सामान खरीदने के लिए घर से थैला लेकर बाजार जाते थे। पर अब दूरदराज के गाँवों में बैठा एक मामूली सब्जी विक्रेता भी अपने पास पालीथीन रखता है क्योंकि उसे मालूम है कि इसके बगैर उसकी सब्जी की बिक्री प्रभावित होगी। इधर तकरीबन दो दशकों से खान–पान में अगर किसी चीज का चलन सर्वाधिक बढ़ा है, तो वह है – चाय। चाय का उपयोग बढ़ने से प्लास्टिक के गिलासों का चलन भी धड़ल्ले से बढ़ा है। यहाँ एक जिम्मेदार मनुष्य होने के नाते हमें यह समझना होगा कि प्लास्टिक या पालीथीन से हमें तात्कालिक सुविधा हो रही है अथवा दीर्घकालिक असुविधा। बाजार से सामान खरीदते वक्त हमें सस्ते या महंगे के आधार पर चीजों का चयन नहीं करना चाहिए, बल्कि हमें यह भी देखना चाहिए कि किस चीज से कितना कार्बन फुट प्रिंट तैयार होगा। आजकल गिफ्ट मार्केट चाइनीज़ वस्तुओं से भरे पड़े हैं। ये वस्तुएं अपेक्षाकृत सस्ती भी रहती हैं और शायद इसीलिए इनकी बिक्री भी अधिक है। पर क्या ऐसे गिफ्ट देकर हम क्षणिक संतुष्टि की जगह दीर्घकालिक परेशानी का तोहफा तो नहीं दे रहे हैं?

आधुनिक युग में आर्थिक विकास की इबारत लिखने में अगर सबसे अहम रोल किसी चीज का है तो वह है – सूचना प्रौद्योगिकी। सूचना प्रौद्योगिकी का आधार है – कंप्यूटर। कंप्यूटर आज मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकता है। पर यह हो–हल्ला भी खूब जोर–शोर से हो रहा है कि कंप्यूटर जनित ई–वेस्ट आज पर्यावरण के लिए बड़ी समस्या बनता जा रहा है। तो क्या इसका उपयोग बंद कर देना चाहिए? कंप्यूटर से पर्यावरण को केवल नुकसान ही हुआ हो, ऐसा भी नहीं है। जब कंप्यूटर नहीं था तब सारे अभिलेख कागजों में रहते थे। कागज पेड़ों की कुर्बानी देकर तैयार किया जाता है। अभिलेखों का डिजिटलाइजेशन होने और सॉफ्ट फार्म में सूचना भेजने से न जाने कितने टन कागज की खपत कम हुई और न जाने कितनी जगह बच गई जो कागजी अभिलेखों से घिर जाती। इसके चलते अब छोटी सी जगह में भी ऑफिस चलाए जा सकते हैं। जगह की बचत जंगलों और खेतिहर भूमि की बचत है और अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण के लिए राहत की बात भी। यही नहीं आज ई–मेल, टेलीफोन, फैक्स, वीडियो कांफ्रेंसिंग जैसी आधुनिक तकनीकों से लोगों के भौतिक मूवमेंट में कमी आई है। कल्पना करें – यदि ये सुविधाएं न होतीं तो एक जगह से दूसरी जगह पर सूचना भिजवाने अथवा खुद जाने में यातायात के अधिक साधनों की जरूरत होती जिनसे पर्यावरण को और अधिक नुकसान होता।

यह सच है कि आज के युग में अस्तित्व बनाए रखने के लिए आर्थिक तरक्की अपरिहार्य है, पर हमें अपनी आने वाली पीढ़ियों के अस्तित्व का खयाल भी रखना होगा। हम उनके लिए अपार धन–संपदा रूपी विरासत भले ही छोड़ जाएं, पर यदि स्वच्छ पर्यावरण न दे सके, तो कुछ भी नहीं दिया। आज जरूरत है हमें अपनी सोच का दायरा बढ़ाने की, एक दूरदृष्टिपरक नजरिया अपनाने की। यदि हम संसाधनों का विवेकपूर्ण चयन करें तो तीव्र आर्थिक विकास पर्यावरण का दुश्मन कदापि नहीं हो सकता। विकासरूपी इंजन के लिए अगर ऊर्जा अपरिहार्य ही है तो हमें ऊर्जा के ऐसे स्रोतों की तलाश करनी होगी जो न केवल पर्यावरण हितैषी हों बल्कि ऊर्जा के अक्षय स्रोत भी।

❍❍❍

वृद्धावस्था में प्रतिगामी बंधक – महत्व एवं उपयोगिता

संतोष श्रीवास्तव
यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
स्टाफ प्रशिक्षण केंद्र, भोपाल

चाणक्य नीति दर्पण 4/4 में कहा गया है: ''जब तक शरीर स्वस्थ व निरोग है और मृत्यु दूर है, तभी तक अपने कल्याण के उपाय करते रहना चाहिए, क्योंकि मृत्यु हो जाने पर कुछ नहीं किया जा सकता।''

उम्र का असर कम करने में व्यक्ति की चिंता एवं सोच का महत्वपूर्ण हाथ होता है। व्यक्ति की चिंता मस्तिष्क को प्रभावित करती है और इसका असर स्वास्थ्य एवं उम्र पर भी पड़ता है।

जीवन में वृद्धावस्था एक स्वाभाविक अवस्था है। वृद्धावस्था को आरामदायक एवं निश्चिंत बनाने के लिए व्यक्ति जीवन भर प्रयास करता है और अपनी जिंदगी के सुनहरे दिन परिवार के पालन–पोषण, एक घर खरीदने एवं अन्य जरूरी चीजों को एकत्र करने में लगा देता है।

पिछले कुछ सालों से सेहत को सलामत रखना महंगा और सामाजिक सुरक्षा बनाए रखना कठिन होता जा रहा है। ऐसे में वरिष्ठ नागरिकों को ऐसी नियमित नकदी की जरूरत बनी रहती है जो उनकी पेंशन अथवा दूसरी आमदनियों के साथ उनकी वित्तीय जरूरतों को पूरा कर सके। महंगाई के इस युग में पति–पत्नी की अपनी संयुक्त आमदनी भी कई बार पारिवारिक व्यय की पूर्ति के लिए अपर्याप्त रहती है और अपने बुजुर्गों की आयु बढ़ने के साथ उनकी बढ़ती जरूरतों को पूरा करने में वे कठिनाई महसूस करते हैं। ऐसे में बुजुर्ग स्वयं को उपेक्षित और अपनी जीवन निर्वाह संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में असहाय महसूस करते हैं।

बुजुर्गों के सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए सरकार ने अनेक प्रयास किए हैं। वृद्धजनों का भरण–पोषण अधिनियम बनाया गया है। इसके अंतर्गत बच्चों को अपने माता–पिता की वृद्धावस्था में समुचित देखभाल एवं भरण–पोषण करना है। इसके अलावा जिन वृद्धजनों के स्वयं के मकान हैं उनके लिए प्रतिगामी बंधक के प्रावधान किए गए हैं। इसके अंतर्गत बुजुर्गों एवं वृद्धजनों को सहज, सुलभ उत्पाद उपलब्ध करवा कर बैंक एक सहारा प्रदान करते हैं और उनकी बुढ़ापे की लाठी बनते हैं। अपनी खून पसीने और मेहनत की गाढ़ी कमाई से बनाए गए उनके मकान को बैंक प्रतिगामी बंधक (Reverse Mortgage) रखकर उनकी जीवन–निर्वाह संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ऋण प्रदान करते हैं। इस प्रकार रिवर्स मोरगेज योजना में मकान का एक आस्ति के रूप में नकदीकरण होता है।

प्रतिगामी बंधक का अर्थ एवं मुख्य प्रावधान

यह योजना 60 वर्ष अथवा अधिक आयु वाले एकल अथवा विवाहित दंपति (जिनमें से किसी एक की आयु 60 वर्ष या अधिक है) की आवासीय संपत्ति–धारकों के लिए है।

इस योजना के अंतर्गत वरिष्ठ नागरिक को अपनी आवासीय संपत्ति (Non Commercial Property) बैंक के पक्ष में बंधक रखनी होती है और बदले में उसे जीवन पर्यंत नियमित अंतराल पर (प्राधिमानतः मासिक) निश्चित धनराशि मिलती रहती है ताकि वह अपनी निर्वाह संबंधी आवश्यकताएं पूरी कर सके। वाणिज्यिक संपत्ति रिवर्स मोरगेज लोन के लिए पात्र नहीं होती है। बैंक से मिली ऋण राशि को अधिवार्षिकी योजना (Annuity Scheme) में निवेश किया जाता है जो ऋण राशि का न्यूनतम 75% होना चाहिए।

ऐसे बुजुर्ग व्यक्तियों के द्वारा स्व–अर्जित अपने स्वामित्व वाले मकान, जिसमें वे स्वयं निवास करते हैं, पर पहले कोई ऋण–भार न हो तथा जो संपत्ति आगामी 20 वर्ष तक निवास योग्य हो, उसके वर्तमान बाजार मूल्य के आधार पर अधिकतम ऋण राशि संपत्ति के मूल्य की 75% सीमा/अधिकतम 1 करोड़ रुपये होगी। समग्र एकमुश्त भुगतान ऋण के 50% या अधिकतम 5 लाख रुपये तक हो सकती है तथा अधिकतम मासिक भुगतान 50,000 रुपये तक हो सकता है।

यदि ऋणी के वारिस चाहें तो ऋण अवधि से पूर्व ऋण चुका कर मकान को बंधकमुक्त करा सकते हैं।

इस व्यवस्था के अंतर्गत ऋणी को मकान की समुचित देखभाल करनी होती है एवं संपत्ति कर, जल कर, बिजली बिल आदि का नियमित भुगतान करना होता है अन्यथा बैंक ऋण खाते से भुगतान करता है।

इस योजना के जरिए ऋणी अपने ही मकान में पूर्ण हक और सम्मान से रहता है।

भारत में प्रतिगामी बंधक में व्यवधान

वृद्धावस्था में भारतीय बुजुर्ग अपने बच्चों पर आर्थिक, शारीरिक एवं भावनात्मक रूप से आश्रित हो जाते हैं तथा वे अपनी निजी आवश्यकताओं हेतु कोई निर्णय आसानी से नहीं ले पाते हैं। उनके निर्णय बच्चों की सहमति पर आधारित होते हैं। इसलिए प्रतिगामी बंधक के लिए वे स्वतंत्र होने के बावजूद, अपनी संपत्ति से लगाव व बच्चों के प्यार के कारण प्रतिगामी बंधक के पक्ष में जल्दी निर्णय नहीं ले पाते हैं, जबकि अमेरिका एवं अन्य पश्चिमी देशों में बुजुर्ग निर्णय लेने में ज्यादा स्वतंत्र एवं सक्षम होते हैं, इस कारण पारिवारिक संपत्ति को प्रतिगामी बंधक रखने में उनके सामने व्यवधान नहीं आते हैं।

भारत में अधिकतर बुजुर्गों को संपत्ति से भावनात्मक लगाव ज्यादा होता है इसलिए वह अभावपूर्ण जीवन जीते हुए भी अपनी संपत्ति को प्रतिगामी बंधक रखने में प्रायः रुचि नहीं रखते हैं।

प्रतिगामी बंधक से बुजुर्ग को धन मिलता है, अपने बच्चों की सहमति से संपत्ति को प्रतिगामी बंधक करने से बच्चों का प्यार व सेवा–सुश्रूषा मिलती रहती है।

प्रतिगामी बंधक को लोकप्रिय बनाने के उपाय

- इस योजना का व्यापक एवं प्रभावी प्रचार–प्रसार किया जाए।
- योजना का सरल एवं आकर्षक ढंग से प्रचार कर लोगों को समझाकर उनका संकोच छुड़वाना चाहिए ताकि वे आवश्यकता के अनुरूप ऋण लेने के लिए प्रेरित हों।
- ऋणी का (ऋण राशि तक का) व्यक्तिगत बीमा करने की सुविधा को एक पैकेज के रूप में इस योजना में शामिल किया जाता है ताकि ऋणी की मृत्यु होने पर ऋणी के बच्चों पर ऋण चुकाने का आर्थिक बोझ नहीं पड़े।

वास्तव में प्रतिगामी बंधक बुजुर्ग व्यक्तियों को एक सम्मानपूर्ण जीवन देता है जहां वे अभाव की जिंदगी से उबर कर अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं। बीमारी की स्थिति में अपना समुचित इलाज आदि करा सकते हैं। यह योजना विशेषकर उन बुजुर्गों के लिए बहुत कारगर एवं उपयोगी होती है जो व्यवसायी हैं, जिनको पेंशन आदि की पर्याप्त नियमित आय नहीं है। इसके अलावा किसी गंभीर बीमारी के लिए जब धन की आवश्यकता होती है एवं बच्चे आर्थिक रूप से पर्याप्त मदद नहीं करते हैं तो इस योजना के अंतर्गत एकमुश्त राशि प्राप्त की जा सकती है।

वर्ष 2013 के अंत तक भारत में 10 करोड़ आबादी 60 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के लोगों की होगी। इस दृष्टि से भारत में प्रतिगामी बंधक योजना की अपार संभावनाएं हैं।

अतः यह माना जा सकता है कि बुजुर्गों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से यह योजना महत्वाकांक्षी एवं उपयोगी सिद्ध हुई है, साथ ही साथ इसके व्यापक प्रचार से इसका लाभ बुजुर्गों तक पहुँच रहा है। प्रतिगामी बंधक न केवल बुजुर्गों के लिए अपितु ऐसे सभी परिवारों में भी लोकप्रिय होता जा रहा है जिन्हें संपत्ति के आधार पर दिए जाने वाले ऋण की आवश्यकता होती है।

❍❍❍

सीमित दायित्व भागीदारी

डी.के. जैन
वरिष्ठ प्रबंधक
पंजाब नैशनल बैंक, मंडल कार्यालय, पुणे

कारोबारी स्वामित्व के विभिन्न स्वरूपों में एक लोकप्रिय एवं परंपरागत स्वरूप है – भागीदारी। भागीदारी स्वामित्व पर भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 के प्रावधान लागू होते हैं। तदनुसार भागीदारी में सम्मिलित सदस्यों अर्थात भागीदारों का दायित्व असीमित होता है। भागीदारों की न्यूनतम संख्या 2 एवं अधिकतम 20 तक सीमित है। बैंकिंग कारोबार करने वाले उपक्रम में भागीदारों की अधिकतम संख्या 10 तक ही हो सकती है। एकल स्वामित्व वाले उपक्रम के स्वामी का दायित्व भी असीमित होता है, लेकिन प्रोप्राइटर के सीमित वित्तीय साधन इस स्वरूप की भी सीमा है। दूसरी ओर कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत गठित निगमित निकाय के सम्मुख सीमित साधनों की समस्या नहीं होती, चूंकि वे सार्वजनिक निमंत्रण द्वारा वांछित पूंजी जुटा सकते हैं। लेकिन उनके सदस्यों (अंशधारकों) का दायित्व सीमित होता है। कंपनी के गठन के लिए एक अपेक्षाकृत लंबी कानूनी प्रक्रिया से होकर गुजरना होता है। इन सभी बातों को ध्यान में रखकर 2008 में सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम पारित किया गया।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इसका स्वरूप भागीदारी के रूप में ही रखा गया है, लेकिन सदस्य भागीदारों का दायित्व उनकी पूंजी के योगदान तक सीमित होता है। इस भागीदारी का गठन भी सदस्य भागीदारों के बीच आपसी सहमति पत्र जिसे 'सीमित दायित्व भागीदारी सहमति पत्र' कहा जाता है, के द्वारा होता है। सहमति पत्र के अभाव में सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम के अनुच्छेद 1 में उल्लिखित प्रावधान लागू होते हैं। इस पर भागीदारी अधिनियम, 1932 के प्रावधान लागू नहीं होते। सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 के प्रमुख प्रावधान निम्नानुसार हैं –

1. यह उक्त अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत गठित एक निगमित निकाय होता है, जिसका पंजीयन अनिवार्य है।
2. इस स्वरूप के उपक्रम के नाम के अंत में सीमित दायित्व भागीदारी (Limited Liability Partnership) या इसका संक्षिप्त रूप LLP जुड़ा होना अनिवार्य है।
3. इसका अस्तित्व अपने सदस्यों से पृथक सतत उत्तराधिकार के रूप में होता है। भागीदार की स्थिति में किसी परिवर्तन से भागीदारी की स्थिति में परिवर्तन नहीं होता।
4. कोई भी व्यक्ति (जो न तो अस्वस्थ मस्तिष्क का हो और न ही उसने दिवालिया घोषित होने के लिए कोई याचिका दायर की हो) अथवा निगमित निकाय इसका सदस्य हो सकता है।
5. इसके सदस्यों की न्यूनतम संख्या 2 है, लेकिन अधिकतम संख्या पर कोई प्रतिबंध नहीं है।
6. प्रत्येक भागीदार उपक्रम के कारोबार की दृष्टि से उपक्रम का अभिकर्ता होता है लेकिन अन्य भागीदारों का अभिकर्ता नहीं। इसीलिए वह उपक्रम के कार्यकलापों के लिए उसी हैसियत से उत्तरदायी है, व्यक्तिगत रूप से नहीं।
7. सीमित दायित्व वाले भागीदारी उपक्रम को अपने नाम एवं मुद्रांक पर संपत्ति खरीदने व बेचने व दावा दायर करने का अधिकार प्राप्त है और इस पर भी दावा दायर किया जा सकता है।
8. आयकर अधिनियम के प्रावधान इन उपक्रमों पर वे ही लागू होते हैं जो भागीदारी स्वामित्व के उपक्रमों पर लागू हैं। अर्थात इन उपक्रमों पर आयकर नहीं लगता, वरन भागीदारों में वितरित लाभ करारोपण योग्य है। अपने हिस्से के लाभ एवं पूंजीगत प्राप्ति पर भागीदार व्यक्तिगत रूप से करदायी है।

9. ये उपक्रम अपने लाभ पर 20.01 प्रतिशत की दर से न्यूनतम वैकल्पिक कर अदा करने के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। वरन इन पर लागू वैकल्पिक न्यूनतम दर 19.05 प्रतिशत है।

10. इन पर अपने लाभ को लाभांश वितरण के पूर्व संचय कोष के लिए प्रावधान की वैधानिक बाध्यता नहीं है।

11. ये उपक्रम लाभांश वितरण करने के लिए भी उत्तरदायी नहीं हैं।

12. किसी भी भागीदारी संस्था, निजी कंपनी एवं असूचित सार्वजनिक कंपनी को सीमित दायित्व भागीदारी में सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम की क्रमशः अनुसूची 2, 3 एवं 4 में उल्लिखित प्रावधानों के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है।

कारोबार के इस स्वरूप में उक्त अधिनियम के अनुसार 'पदस्थ भागीदार' की पदस्थापना का प्रावधान किया गया है। तदनुसार पदस्थ भागीदार कोई व्यक्ति ही हो सकता है। ऐसे उपक्रम में कम से कम 2 पदस्थ भागीदार होने चाहिए। इनमें भी कम से कम एक भारत का निवासी होना अनिवार्य है। निगमित निकाय के भागीदार होने की स्थिति में निकाय द्वारा नामित व्यक्ति पदस्थ भागीदार होता है। पदस्थ भागीदार उपक्रम की ओर से प्रस्तुत की जाने वाली विवरणियों को दायर करने एवं अधिनियम द्वारा वांछित अन्य वैधानिक दायित्वों के निर्वाह के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

भागीदारी अधिनियम, 1932 एवं कंपनी अधिनियम, 1956 के प्रावधानों के अंतर्गत स्थापित उपक्रमों की कतिपय सीमाओं को दूर करने के लिए सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 पारित किया गया। इसके अंतर्गत स्थापित उपक्रम उनके लिए अधिक उपयोगी हैं जो कारोबार की विभिन्न विधाओं में पारगंत हैं लेकिन साथ–साथ कारोबार करना चाहते हैं। सेवा क्षेत्र के उन उद्यमियों, यथा – सनदी लेखाकार, लागत लेखाकार, वकील, शिल्पी, इंजीनियर, डॉक्टर, आदि के लिए भी यह उपयोगी है जो साथ–साथ कारोबार करने के लिए कंपनी की स्थापना नहीं कर सकते और अपने दायित्व को भी असीमित नहीं करना चाहते। जैव तकनीक, सूचना प्रौद्योगिकी, बौद्धिक संपदा, आदि से जुड़े उद्यमियों के लिए भी सीमित दायित्व भागीदारी एक अच्छा विकल्प है।

अपनी उपयुक्त विशेषताओं के उपरांत भी सीमित दायित्व भागीदारी का स्वरूप अभी तक बहुत अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाया है। आने वाला समय इसे कारोबार जगत में उपयोगिता की कसौटी पर परखेगा। समय की मांग के अनुसार इसमें संशोधन एवं सुधार भी होंगे। तथापि आशा की जानी चाहिए कि कारोबार का यह स्वरूप भी अपनी उपयोगिता सिद्ध करेगा एवं लोकप्रिय होगा।

❍❍❍

मार्च 2012 की स्थिति के अनुसार 10 प्रमुख भारतीय बैंकों के समुद्रपारीय परिचालन

बैंक	शाखाएं	सहायक कंपनियां	आरओ	संयुक्त उपक्रम बैंक	कुल
भारतीय स्टेट बैंक	52	5	8	4	69
बैंक ऑफ बड़ौदा	47	9	2	1	59
बैंक ऑफ इंडिया	24	4	5	0	33
आईसीआईसीआई बैंक लि.	9	3	8	0	20
पंजाब नैशनल बैंक	4	3	5	1	13
इंडियन ओवरसीज़ बैंक	6	0	3	0	9
ऐक्सिस बैंक	4	0	3	0	7
केनरा बैंक	5	0	1	0	6
यूनियन बैंक	1	0	5	0	6
यूको बैंक	4	0	1	0	5
अन्य	9	0	14	0	23
कुल	165	24	55	6	250

स्रोत– 2011–2012 में भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति विषयक भारतीय रिज़र्व बैंक की रिपोर्ट

इतिहास के पन्नों से

यूनियन बैंक ऑफ़ इंडिया

आपके सपने सिर्फ आपके नहीं .....

अपोलो स्ट्रीट, फोर्ट, मुंबई स्थित पुराना प्रधान कार्यालय

निरंतर चार वर्षों तक चले प्रथम विश्व युद्ध से भारत की अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हुई थी। ऐसे में महान दूरद्रष्टा सेठ श्री सीताराम जी किशन दयाल पोद्दार ने मुंबई में बैंक स्थापित करने की संकल्पना की एवं उन्होंने ही बंबई के व्यवसायी समुदाय को एक बैंक की स्थापना करने हेतु तैयार किया। इस बैंक का नाम था – यूनियन बैंक आफ इंडिया।

आइए हम सुनते हैं यूनियन बैंक ऑफ इंडिया की कहानी उसी की जुबानी —

11 नवंबर 1919 को मेरी स्थापना हुई। मेरा पंजीकृत कार्यालय 7, मर्जबान रोड, फोर्ट, बंबई में था। 15 नवंबर के दिन मेरे निदेशक मंडल की प्रथम बैठक हुई, जिसके कार्यवृत्त अंग्रेजी के साथ ही तत्कालीन जनभाषा हिंदी में भी लिखे गए थे। आगे चलकर हिंदी हमारे देश की राजभाषा बनी एवं राजभाषा में लिखे राष्ट्रीय गौरव के इस कार्यवृत्त को संजोकर रखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है।

1921 में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने मेरे पंजीकृत कार्यालय का उद्घाटन किया। उस अवसर पर उनके द्वारा कही गई बात बहुत प्रासंगिक एवं राष्ट्रीय स्वाभिमान के लिए महत्वपूर्ण थी, उन्होंने कहा था–

''हमारे अंदर बड़े बैंकों के संचालन की क्षमता होनी चाहिए। हमें अपने राष्ट्रीय कार्यों के लिए सक्षमता से करोड़ों रुपये का प्रबंध करना आना चाहिए। हमारे पास बहुत से बैंक नहीं हैं इसका मतलब यह नहीं है कि हमें करोड़ों रुपयों का प्रबंध करना नहीं आता है।''

बापू ने अपने उक्त कथन के माध्यम से मुझ पर एवं मेरे संस्थापकों पर बहुत बड़ा दायित्व डाला था। मैं अपने दायित्व को तब से आज तक लगातार निभाता आ रहा हूँ।

31 मार्च 1923 को समाप्त वित्तीय वर्ष में मुझे ₹ 3,17,564 का शुद्ध लाभ हुआ। मेरा लाभ बढ़ता रहा एवं मार्च 1938 तक मेरे पास ₹ 1 करोड़ से अधिक की जमाराशि थी। बंबई के बाहर मेरी पहली शाखा का उद्घाटन 11 जुलाई 1932 को राजकोट में हुआ। 1939 में आरंभ हुए दूसरे विश्व युद्ध के कारण मेरा काम बहुत प्रभावित हुआ। नकदी की मात्रा बढ़ गई जबकि निवेश के अवसर बहुत कम रह गए थे। ऐसे में महंगाई के बढ़ जाने से बैंक को अपने कर्मचारियों को अतिरिक्त भत्ते भी देने पड़े। उस दौर में आय कम थी, किंतु व्यय बढ़ रहे थे।

सेठ हंसराज प्रागजी ठाकरसी
संस्थापक निदेशक

समय बदला एवं देश स्वाधीन हुआ, मैंने स्वतंत्रता का उत्सव अपने समस्त कर्मचारियों को 15 दिनों का अतिरिक्त वेतन देकर मनाया। 1956 में मुझे सभी विदेशी मुद्राओं में व्यापार करने के लिए लाइसेंस मिला। यह अपने आप में बहुत दुरूह कार्य था। इस लाइसेंस से मुझे बहुत लाभ हुआ और कारोबार बढ़ गया। 11 फरवरी 1957 में मैंने दिल्ली में उत्तर भारत की

अपनी प्रथम शाखा खोली। 1963 से 1969 की अवधि मेरे लिए सर्वाधिक व्यस्तता का समय था। इस काल में मेरा कारोबार तेजी से बढ़ा। 1964 में मेरी 100वीं शाखा इरिंजालकुडा, केरल में खुली।

अपनी स्थापना के पश्चात 50 सालों तक मैंने बहुत से उतार–चढ़ाव देखे। मैं धीरे–धीरे अपना विकास करता गया। 1968 तक आते–आते मेरे पास जमाराशि ₹ 100 करोड़ से अधिक हो चुकी थी। यह भी मेरी विकास यात्रा में एक मील का पत्थर था।

अपने समाजवादी दायित्व को निभाते हुए 19 जुलाई 1969 को एक महत्वपूर्ण अध्यादेश जारी कर भारत सरकार ने मेरे सहित उन सभी 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जिनकी जमाराशि 18 जुलाई 1969 को ₹ 50 करोड़ या उससे अधिक थी। देश हित में किए गए इस कार्य का विरोध व समर्थन दोनों ही होता रहा, किंतु कालांतर में यह दूरदर्शितापूर्ण कदम साबित हुआ। बाद के वर्षों में बैंकिंग सेक्टर का न केवल अभूतपूर्व विस्तार हुआ, अपितु देश के जन–जन तक बैंकिंग सुविधा पहुंचाई जा सकी। यह मेरे राष्ट्रीयकरण का ही परिणाम था कि 31 दिसंबर 1969 को मेरा शुद्ध लाभ ₹ 19 लाख 90 हजार तक जा पहुंचा।

दक्षिण में मुझे नेतृत्व करने का अवसर भी मिला। 1970 में मुझे केरल के एर्णाकुलम में अग्रणी बैंक का दायित्व सौंपा गया। 1972 में जब एर्णाकुलम को विभाजित कर इडुक्की एवं कोट्टयम नामक जिले बनाए गए तो उनका भार भी मुझे ही दिया गया, इसी तरह मध्य प्रदेश के दो पिछड़े जिले रीवा एवं सीधी भी मुझे प्राप्त हो गए। तीर्थों का प्रांत उत्तर प्रदेश मुझे बहुत रास आया, वहाँ मैंने बहुत विस्तार किया। यहाँ के 8 जिले मेरे नेतृत्व में बैंकिंग कार्य करते हैं। मेरी 500वीं शाखा नलबाडी, असम में प्रारंभ हुई।

वैसे तो मुझे बहुत से गौरव प्राप्त हुए, किंतु 1977 में किसी भी बैंक द्वारा प्रथम बार वार्षिक रिपोर्ट हिंदी में प्रकाशित करने की उपलब्धि भी मेरे ही नाम दर्ज है। मुझे 1979–80 के दौरान उत्कृष्ट निर्यात कार्य–निष्पादन के लिए भारत के राष्ट्रपति जी द्वारा भारत सरकार का राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किया गया। 1977 में ही मेरी 1000वीं शाखा उत्तर प्रदेश, वाराणसी के चेजगंज में प्रारंभ हुई।

जब मेरा विस्तार हो रहा था ऐसे में 1985 में मिराज स्टेट बैंक लिमिटेड का अपनी 26 शाखाओं के साथ मुझ में विलय हो गया। 11 नवंबर 1994 को मेरी प्लैटिनम जयंती बड़े उत्साह के साथ मनाई गई। 1997 में मेरे पास ₹ 20,000 करोड़ से अधिक की जमाराशि हो गई। 1998 में मेरे द्वारा दी गई उधार राशि ₹ 10,000 करोड़ से अधिक हो गई जो कि हमारे राष्ट्रीय विकास एवं समृद्धि हेतु आवश्यक थी।

2001 में मेरा कुल कारोबार ₹ 50,000 करोड़ के पार जा पहुंचा, 2002 में मैंने वाणिज्यिक आयात एवं बुलियन डीलरों को स्वर्ण की बिक्री आरंभ की, साथ ही डिपॉजिटरी सेवाएं व नकद प्रबंधन सेवाएं प्रारंभ कीं, इसी वर्ष मेरे 18 करोड़ शेयर का पब्लिक इश्यू जारी हुआ जो कि नेशनल स्टॉक एक्सचेंज एवं बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध है। मेरे शेयरों में बाजार की तेजी के साथ बहुत उछाल आया है एवं अपने आरंभिक मूल्य से आज यह लगभग 17 गुना मूल्य पर पहुंच गया है। असोचेम द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार मेरे निवेशकों को प्राप्त प्रतिफल के संदर्भ में मुझे प्रथम स्थान प्राप्त हुआ।

मैंने आईटी पहल पर 2003 में कोर बैंकिंग सॉल्यूशन को अपनाते हुए टेलीबैंकिंग सहित 'कहीं भी कभी भी' बैंकिंग सेवा उपलब्ध कराने का लक्ष्य प्राप्त किया। इसी वर्ष साधारण बीमा हेतु न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के उत्पादों की बिक्री शुरू हुई। इसी तरह नए निवेशकों को बाजार तक लाने के लिए म्यूच्युअल फंड

आरंभ किया गया। इसी साल मुंबई में मेरी सीप्ज++ ऑफशोर बैंकिंग यूनिट प्रारंभ हुई। वर्ष 2004 में यूनियन ई–रेमिट का शुभारंभ हुआ। फोर्ब्स द्वारा जारी विश्व की 2000 सर्वाधिक शक्तिशाली एवं बड़ी कंपनियों में मैं भी सम्मिलित हूँ। चार वर्ष की इस अल्प अवधि में अर्थात 31 मार्च 2005 के दिन मेरा कुल कारोबार ₹ 1 लाख करोड़ हो गया था। इसी वर्ष फोर्ब्स द्वारा जारी 30 प्रमुख भारतीय कंपनियों में एक मैं भी था।

मैंने अपने देश की कृषि एवं किसानों के उत्थान हेतु कृषि केंद्र एवं ग्राम ज्ञान केंद्रों की स्थापना की जिसके माध्यम से उन्हें उत्पादों, योजनाओं एवं मौसम की स्थिति आदि की जानकारी सरलता से प्राप्त हो जाती है।

वर्ष 2006 में मैंने सकल ₹ 45 करोड़ का फॉलोआन पब्लिक इश्यू जारी किया जो कि ₹ 110 प्रति शेयर मूल्य पर था। इसी वर्ष मैंने अपने 51 केंद्रों पर 'यूनियन मित्र' नामक वित्तीय शिक्षा सेवा प्रारंभ की। वर्ष 2007 मेरे लिए बहुत सी उपलब्धि लेकर आया। इस वर्ष मेरा विदेशों में भी विस्तार हुआ। चीन की आर्थिक राजधानी शंघाई एवं संयुक्त अरब अमीरात की राजधानी अबू धाबी में अपने प्रतिनिधि कार्यालयों की स्थापना की। मुझे अपने ग्राम ज्ञान केंद्रों के लिए प्रतिष्ठित स्काच चैलेंजर अवार्ड से सम्मानित किया गया।

अपने बेहतरीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए मुझे 2008 में तीसरी बार गोल्डन पीकॉक नेशनल अवार्ड से सम्मानित किया गया। इसी वर्ष मैं ऐसा पहला राष्ट्रीयकृत बैंक बना, जिसने शत प्रतिशत सी.बी.एस. नेटवर्किंग के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। देशभर के 101 गाँवों को अंगीकृत कर यूनियन आदर्श ग्राम की शुरुआत की। इसी वर्ष मैं हांगकांग में पूर्णकालिक ओवरसीज़ शाखा के रूप में जा पहुंचा। इसी साल मुझे मेरा नया लोगो मिला और मैंने रीब्रैंडिंग पहल की शुरुआत की। मैं सार्वजनिक बैंकों में ऐसा पहला बैंक बना जिसने मोबाइल बैंकिंग की शुरुआत की। मेरी इस सेवा का नाम ''यूमोबाइल'' है। वर्ष 2009 में सिडनी, आस्ट्रेलिया में मेरा प्रतिनिधि कार्यालय शुरू किया गया।

2010 में मुझे राजभाषा में उत्कृष्ट योगदान हेतु प्रतिष्ठित इंदिरा गांधी राजभाषा शील्ड का प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसी वर्ष मुझे डेल कारनेगी नेतृत्व पुरस्कार प्राप्त हुआ। 2011 में मेरी यूनियन एक्सपीरियंस शाखाओं की शुरुआत हुई। इन शाखाओं में ग्राहक स्वयं अपने बैंकिंग कार्य संपन्न कर सकते हैं। अपने सामाजिक दायित्वों को मैं निरंतर वहन करते हुए वर्ष 2012 में एक नए आयाम पर आ पहुंचा। इस वर्ष मैंने दृष्टिबाधित एवं अन्य विकलांगों की पहुंच में आने वाले बोलते एटीएम प्रस्थापित किए। इसी वर्ष मैंने 4 लाख करोड़ रुपये के कारोबार का लक्ष्य पार कर लिया था।

राष्ट्रीयकरण के दूरदर्शितापूर्ण उद्देश्य के पथ पर अग्रसर होते हुए अपने सामाजिक दायित्व के एक अंश के रूप में मैं वित्तीय समावेशन नामक पावन अभियान के तहत बैंकिंग सुविधाओं से वंचित जनसमूह को बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए कटिबद्ध हूँ। इसके लिए मैंने 2015 तक भारत के 1,20,000 गांवों में 30 मिलियन ग्राहकों को बॉयोमेट्रिक कार्ड तकनीक में शामिल करने का लक्ष्य तय किया है। साथ ही, इसी योजना के अंतर्गत सुदूरवर्ती ग्रामीण इलाकों में रहने वाले 2.1 मिलियन लोगों को बॉयोमेट्रिक स्मार्ट कार्ड मुहैया कराकर उन्हें बैंकिंग अवसर प्रदान किया है जो एक क्रांतिकारी कदम साबित हुआ है।

मैंने वंचित लोगों को बैंकिंग अवसर तो उपलब्ध करा दिया, लेकिन पाया कि इसका पूरा लाभ उठाने के लिए उनमें जानकारी का अभाव है। इससे निपटने के लिए उन्हें वित्तीय शिक्षा प्रदान करने के लिए उनके साथ जुड़कर उन्हें जानकारी देना चाहा ताकि वे सहजता महसूस कर सकें। इसके लिए मैंने **यूनियन मित्र** का रूप धारण किया। इस रूप में मैं उन लोगों के साथ सीधे जुड़कर उन्हें बैंकिंग की आदत डालने के लिए विभिन्न वित्तीय उत्पादों व सेवाओं की जानकारी देता रहा हूँ। बैंक खाता खोलने से लेकर ब्याज दरों, शुल्कों की जानकारी देता हूँ, वहीं ऋण लेने के लिए आवश्यक बातें उन्हें बताता हूँ और निवेश करने के लिए उपलब्ध अवसरों से उन्हें एक मित्र की भांति अवगत कराता हूँ। इससे मैं उन लोगों के जीवन स्तर में उन्नति कर गर्व महसूस करता हूँ।

मैंने किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए **किसान क्लब** नामक एक योजना बनाई है। किसानों को अपनी समस्याओं का समाधान करने के साथ–साथ मौजूदा पद्धतियों में सुधार कर नवीन तौर–तरीकों को अपनाने के लिए आपस में निस्संकोच चर्चा करने का यह एक अच्छा मंच है। इस मंच में शामिल होने के लिए किसानों को मेरे पास खाता रखने की बंदिश नहीं है, कोई भी किसान इसका लाभ उठा सकता है। खास बात यह है कि ऐसे किसान क्लब स्वयं किसानों द्वारा मेरी ग्रामीण शाखाओं के सहयोग से संचालित होते हैं।

इसी प्रकार पिछड़े ग्रामीण इलाकों में वित्तीय व सामाजिक विकास को साकार करने के लिए **यूनियन आदर्श ग्राम** के तहत मैंने

देश भर के 101 गांवों को गोद लिया है। वीकेसी के अधिकारियों ने मेरी शाखाओं के प्रबंधकों और संबंधित क्षेत्रीय प्रबंधकों से सलाह मशविरा कर उक्त पिछड़े गांवों की पहचान की है। ऐसे गांवों में बुनियादी संरचना के निर्माण, निवेश और अन्य मूलभूत आवश्यकताओं के लिए मैंने ऋण–सह–विकास योजना तैयार की है। मैं ऐसी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में सरकारी विकास एजेंसियों से संपर्क स्थापित करता हूँ। यदि इन कार्यों में धन राशि की कमी हो तो मैं अपने कॉरपोरेट सामाजिक दायित्व कोष और ग्रामीण प्रचार कोष से रकम जुटाने के लिए भी तैयार हो जाता हूँ। इसी योजना के अंतर्गत दत्तक गांवों में 'एक बालिका को गोद लेना' मेरी एक अहम् परियोजना है। इसके अंतर्गत दत्तक गांवों में हुए कार्य–प्रदर्शन के संबंध में केस–स्टडी भी की गई है जिनके निष्कर्ष उत्साहवर्धक रहे हैं।

परिवर्तन ही इस दुनिया में अपरिवर्तनीय है और परिवर्तन से विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। हाल में री–ब्रैंडिंग प्रक्रिया के अंतर्गत मेरे 'लोगो' में बदलाव किया गया है। लोगो के लिए एक ऐसा डिज़ाइन चुना गया है जिसमें मुझे प्रतिबिंबित करने वाले आपस में जुड़े हुए दो 'U' अक्षर आपसी संबंधों को अभिव्यक्त करते हैं। इसमें लाल रंग संकल्प, अधिकार, ऊर्जा और शक्ति का प्रतीक है, वहीं नीला रंग गहराई, निष्ठा, स्थायित्व एवं ईमानदारी का। यह लोगो मेरी गुणवत्ता और मूल्य का द्योतक है। मैंने अपनी री–ब्रैंडिंग प्रक्रिया के तहत 4 प्रमुख प्रस्तावों के माध्यम से ग्राहकों को निम्नलिखित ब्रैंड वायदों की पेशकश की, जो इस प्रकार हैं :

- पैसे की पूरी कीमत (वैल्यू फॉर मनी),
- उत्पादों की सुपुर्दगी और सेवाएं नियत समय के अंदर प्रदान करना,
- ग्राहकों को बैंकिंग सरणी के भिन्न–भिन्न विकल्प मुहैया कराना,
- उत्पादों और उनके मूल्यों के संबंध में पारदर्शिता।

मैंने शारीरिक रूप से अशक्त व्यक्तियों, विशेषकर व्हीलचेयर और दृष्टिहीन प्रयोक्ताओं, की सुविधार्थ सुगम और बोलती एटीएम मशीनों की स्थापना की है। इससे उक्त व्यक्तियों को वित्तीय मामलों के संबंध में अधिक वैयक्तिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है। मेरी सुगम व बोलती एटीएम मशीनें भारतीय रिज़र्व बैंक के मानकों के अनुरूप काम करती हैं। यह एटीएम हमारे ब्रैंड 'संपूर्ण एटीएम' का एक अंग है। इन मशीनों में हिंदी और अंग्रेजी में भारतीय लहजे में टीटीएस आवाज, शारीरिक रूप से अशक्त व्यक्तियों के लिए सुलभ बुनियादी ढांचा, मेरे तथा अन्य बैंकों के कार्ड लेनदेन के लिए पूर्ण रूप से आवाज–आधारित मार्गदर्शन, सहयोग आदि मौजूद है। इनका प्रयोग करने के लिए किसी विशेष एटीएम कार्ड की ज़रूरत नहीं पड़ती, बल्कि प्रयोक्ता अपने नियमित एटीएम कार्ड के ज़रिए अपना लेनदेन कर सकता है। एटीएम पार्ट जैसे कार्ड स्लॉट, नकद वितरक, रसीद प्रिंटर, आदि मालूम करने के लिए एटीएम मशीन पर ब्रेल निर्देशक लगाए गए हैं। मैंने इस बात पर ध्यान दिया है कि इन मशीनों में सुरक्षा और गोपनीयता से समझौता न हो, इसलिए दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए आवाज एक हेडफोन के जरिए निजी तौर पर सुनाई देगी और उपयोगकर्ता को एटीएम स्क्रीन को छिपाने का विकल्प भी प्राप्त है। इसी प्रकार, एक व्हीलचेयर एटीएम उपयोगकर्ता के लिए आवश्यक सुविधाएं, जैसे रैंप, फर्श मार्गदर्शन, दरवाजा आकार, ऊंचाई और पहुंच आदि भी उपलब्ध हैं।

इतिहास के पन्नों से वर्तमान की ओर आएं तो मैं पाता हूँ कि अपनी सुदीर्घ एवं समृद्ध इतिहास यात्रा के परिणामस्वरूप आज मैं देशभर में अपनी 3500 से अधिक शाखाओं एवं अपने ग्रामीण बैंकों के माध्यम से जन–जन की सेवा में निरंतर संलग्न हूँ। राष्ट्रीयता के विचार को लेकर मेरा जन्म हुआ, मैंने पराधीनता के काल में न केवल अपना विकास किया बल्कि देश की समृद्धि का स्वप्न भी देखा और पूर्ण किया। मेरी सफल विकास यात्रा और वर्तमान समृद्ध स्वरूप का श्रेय मुझे निरंतर प्राप्त कुशल सर्वोच्च प्रबंधन एवं प्रभावी नेतृत्व को जाता है। अंत में –

मंजिलें उन्हीं को मिलती हैं, जिनके सपनों में जान होती है,
पंखों से कुछ नहीं होता, हौसलों से उड़ान होती है।

शेष फिर..

आपका

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
अच्छे लोग, अच्छा बैंक
Union Bank Of India
Good People to bank with

यूनियन बैंक ऑफ़ इंडिया

प्रस्तुतीकरण – **एच. पंढरीनाथ**
सहायक प्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

❍❍❍

सेवा उद्योग में बहुत जरूरी हैं सॉफ्ट स्किल्स

विजय प्रकाश श्रीवास्तव
संकाय सदस्य
एमडीआई, बेलापुर

दुनिया औद्योगिक क्रांति के एक बड़े दौर से गुजर चुकी है। उद्योगों में उनके मालिक शुरू से ही श्रमिकों में हार्ड स्किल्स होने पर जोर देते थे। हार्ड स्किल्स का मतलब तकनीकी जानकारी से था जो मशीन व श्रमिक के संबंधों को परिभाषित करती थी। हार्ड स्किल्स की भूमिका मुख्यतः उत्पादन बढ़ाने और मशीन निर्मित माल की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए थी।

औद्योगीकरण को विकास से जोड़कर देखा जाता है और अर्थव्यवस्था में हम उद्योग–धंधों के महत्व को नजर अंदाज नहीं कर सकते। इस नजरिए से हार्ड स्किल्स का महत्व अभी भी है और आगे भी हमेशा बना रहेगा। पर जैसे–जैसे विकास का दायरा बढ़ता है अर्थव्यवस्था में सेवा उद्योग की भागीदारी बढ़ती जाती है। हम अपनी आँखों के सामने ऐसा होता देख रहे हैं। सेवा उद्योग में सॉफ्ट स्किल्स की अधिक जरूरत है। आज की अर्थव्यवस्था को 'नई अर्थव्यवस्था' अर्थात न्यू इकॉनॉमी भी कहा जाता है। इस नई अर्थव्यवस्था में सॉफ्ट स्किल्स का ज्यादा महत्व है, इसे सभी स्वीकार करते हैं।

हमारे देश भारत में बेरोजगारी की समस्या की गंभीरता को लेकर अक्सर चर्चा होती रहती है। देश में बड़ी संख्या में पढ़े लिखे डिग्रीधारी युवा हैं जिनके पास रोजगार नहीं है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में इस समस्या का एक दूसरा पहलू सामने आया है जो है नियोजनीयता यानि इंप्लायबिलिटी का। देश में बहुत सी कंपनियों का कहना है कि उनके पास रिक्तियाँ हैं पर इन्हें भरने के लिए सुयोग्य उम्मीदवार नहीं मिल रहे हैं और कमी डिग्री या डिप्लोमा धारकों की नहीं है बल्कि ऐसे लोगों की है जो क्वालिफाइड हैं पर नियोजनीय नहीं हैं। कंपनियाँ उन्हें जॉब रेडी इसलिए नहीं मानती हैं क्योंकि उनके पास वे सॉफ्ट स्किल्स नहीं हैं जिनकी जरूरत उन्हें अपनी भूमिका निभाने में पड़ेगी। अब ऐसे पूरक कोर्स शुरू हो चुके हैं जिनका उद्देश्य लोगों को सॉफ्ट स्किल्स सिखाकर उन्हें नियोजनीय बनाना है। इंजीनियरिंग, कंप्यूटर आदि की पढ़ाई पूरी करने के बाद युवा अब ऐसे पाठ्यक्रमों में दाखिला ले रहे हैं ताकि उनके लिए रोजगार पाना आसान हो। इससे सॉफ्ट स्किल्स का महत्व समझा जा सकता है।

सॉफ्ट स्किल्स से आशय

सॉफ्ट स्किल्स उन कुशलताओं, योग्यताओं व प्रवृत्तियों का समुच्चय है जो औपचारिक या तकनीकी ज्ञान से नहीं बल्कि व्यक्तित्व, नजरिए व व्यवहार से संबंधित होती हैं। सॉफ्ट स्किल्स में एक नहीं बल्कि कई कुशलताएँ शामिल हैं जिनकी आवश्यकता व्यक्तिगत जीवन व सांगठनिक जीवन दोनों में पड़ती है पर संगठनों के लिए इसका विशेष महत्व है और इसीलिए अब इन्हें नियोजनीय कुशलता के रूप में भी देखा जाने लगा है। सॉफ्ट स्किल्स को अनुभव करना इसे परिभाषित करने की अपेक्षा आसान है।

सॉफ्ट स्किल्स के बारे में लोगों को कतिपय भ्रांतियाँ हैं। कुछ लोग इसे भाषा ज्ञान से जोड़कर देखते हैं। सॉफ्ट स्किल्स का भाषा विशेष के ज्ञान से सरोकार नहीं है। इसमें यह महत्वपूर्ण नहीं है कि आप किस भाषा में बोलते हैं बल्कि यह महत्वपूर्ण है कि आप किस प्रकार से बोलते हैं। केवल सॉफ्ट स्किल्स के जरिए सफलता हासिल की जा सकती है, यह दूसरी भ्रांति है। सफलता के लिए हार्ड व सॉफ्ट दोनों स्किल्स जरूरी हैं। जैसे एक बैंकर को बैंकिंग भी आनी चाहिए और उसे ग्राहकों की जरूरतें समझने में भी निपुण होना चाहिए। इनमें पहला हार्ड स्किल्स में आएगा और दूसरा सॉफ्ट स्किल्स में।

विभिन्न सर्वेक्षणों में सेवा क्षेत्र के नियोजकों से जब यह पूछा गया कि वे अपने कर्मचारियों में किन कुशलताओं की अपेक्षा रखते हैं तो उनके उत्तर में सबसे अधिक ज़ोर सॉफ्ट स्किल्स पर था। इस प्रकार सॉफ्ट स्किल्स की काफी मांग है, परंतु इनकी कमी महसूस की जा रही है।

सॉफ्ट स्किल्स का होना एक व्यक्ति की कई प्रकार से मदद करता है। इनसे व्यक्ति की स्वीकार्यता बढ़ती है और उसके लिए चुनौतियों का सामना करना आसान हो जाता है। कारोबार बढ़ाने और ग्राहकों को टिकाए रखने में भी इन स्किल्स का योगदान है। संगठन की छवि इसके मानव संसाधन की गुणवत्ता से बनती है और इस गुणवत्ता में सॉफ्ट स्किल्स निर्धारक तत्त्व हैं। सॉफ्ट स्किल्स व्यक्ति में मौजूद संभावनाओं को साकार करने में सहायक हैं।

सॉफ्ट स्किल्स में शामिल कुछ कुशलताओं की चर्चा नीचे की गई है –

संप्रेषण कौशल

संप्रेषण की जरूरत कदम–कदम पर पड़ती है चाहे वह व्यक्तिगत जीवन हो या सांगठनिक जीवन। संगठन में लोग मिलकर निश्चित उद्देश्यों के लिए कार्य करते हैं। जब तक लोगों के बीच संप्रेषण न हो इन उद्देश्यों को हासिल नहीं किया जा सकता। कहते हैं प्रबंधन कार्य कराने की कला है। इस कला में उसे निपुण माना जाएगा जिसका संप्रेषण परिष्कृत हो। संप्रेषण सभी को आता है, यहाँ ज़ोर कारगर संप्रेषण पर है। कारगर संप्रेषण उसे कहेंगे जो हमें वांछित परिणाम दिला दे।

संप्रेषण शाब्दिक अथवा गैर शाब्दिक हो सकता है। शाब्दिक संप्रेषण वह है जिसमें हम मौखिक या लिखित भाषा का इस्तेमाल करते हैं। परिवार और समाज में हमारा ज्यादातर कार्य मौखिक संप्रेषण से चल जाता है। संगठन में भी हम काफी समय मौखिक संप्रेषण करते हैं पर यहाँ लिखित संप्रेषण पर निर्भरता ज्यादा रहती है। संगठन में कुछ भूमिकाएँ ऐसी हो सकती हैं जिनमें लिखित संप्रेषण में ज्यादा कुशलता की जरूरत हो जबकि कुछ में मौखिक संप्रेषण की कुशलता से काम चल सकता है।

गैर शाब्दिक संप्रेषण के लिए प्रचलित नाम है बॉडी लैंग्वेज जिसे हिन्दी में देहभाषा कहते हैं। हमारी जबान तो बोलती ही है, हमारा शरीर भी बोलता है। इशारों के जरिए अपनी बात कहना देहभाषा का ही रूप है। देहभाषा को लिखित या मौखिक संप्रेषण के साथ मिलाकर देखा जा सकता है और स्वतंत्र रूप से भी। संप्रेषण में कुशल उसे कहेंगे जो अपनी बात औरों के सामने प्रभावी ढंग से रख सके तथा औरों की बातें भी समझ सके। अतः संप्रेषण में सिर्फ कहना नहीं बल्कि सुनना भी शामिल है। आपका संदेश किसके लिए है इसे ध्यान में रखते हुए उपयुक्त भाषा व सही शब्दों का चुनाव करना चाहिए। देहभाषा के प्रति भी सचेत रहना जरूरी है ताकि इससे कोई गलत संदेश न जाए और जो कुछ भी हम बताना चाहते हैं उसे सही ढंग से लिया जाए।

टीम भावना

टीम चुने हुए लोगों के समूह को कहते हैं जो एक उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु सम्मिलित प्रयास करते हैं। हो सकता है एक टीम के सदस्यों के बीच कार्य बंटे हों पर यह माना जाता है कि कम से कम एक उद्देश्य ऐसा होना चाहिए जो टीम में सभी के लिए हो।

एक व्यक्ति में टीम भावना तब मौजूद मानी जाएगी जब वह संगठन के लक्ष्य को अपना लक्ष्य समझे और इसे हासिल करने में अपना सर्वोत्तम योगदान दे। यह कोई जरूरी नहीं कि टीम में सभी की सोच एक जैसी हो इसलिए व्यक्ति को लोगों के साथ ताल–मेल बैठाकर कार्य करने में समर्थ होना चाहिए। विविधता का सम्मान भी टीम भावना को दर्शाता है। टीम भावना का मतलब यह नहीं है कि सब की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाई जाए और कोई भिन्न मत न पेश किए जाएं। वास्तव में टीम का एक बड़ा लाभ यह है कि इसमें बहुत सारे नए विचार आते हैं, अलग–अलग तरीके सुझाए जाते हैं। एक सदस्य के रूप में सभी को अपने विचार रखने चाहिए तथा औरों के विचारों के प्रति खुला दृष्टिकोण रखना चाहिए। टीम में सभी के लिए जरूरी है कि वह अपनी भूमिका को अच्छी तरह समझे और इसे भली प्रकार निभाए। सहयोग देने, जरूरत पड़ने पर अपने हितों का त्याग करने को तत्पर रहना टीम भावना के लक्षण हैं।

सृजनशीलता

सृजनशीलता अंग्रेजी के क्रिएटिविटी शब्द का पर्याय है। सृजनशीलता से आशय प्रचलित व पुराने ढंग में बदलाव की तलाश करना है, ऐसे बदलाव जो समय, श्रम व पैसा बचाएं और जिन्हें अपनाकर कार्य करना ज्यादा सुविधाजनक हों। परिवर्तन पूर्व में भी होते थे, परंतु अब परिवर्तनों की गति तेज हो चुकी है। समय अब पहले जैसा नहीं रहा। कारोबार जगत में प्रतियोगिता बढ़ती जा रही है और पहले के मानदंड बदल रहे हैं। ऐसे में सॉफ्ट स्किल के रूप में सृजनशीलता एक नया महत्व अख्तियार कर लेती है। सीमित दायरे की सोच आज के परिवेश से मेल नहीं खाती। प्रतियोगिता में अपनी जगह बनानी है तो नया सोचना और करना होगा जो व्यावहारिक हो तथा वक्त की मांग को पूरा करे। इसमें सृजनशीलता ही काम आएगी। यह सोचना गलत है कि सृजनशीलता का गुण केवल कुछ गिने–चुने लोगों में होता है। सच तो यह है कि सृजनशीलता हम सभी में मौजूद है। आवश्यकता इसे विकसित करने, निखारने तथा सँवारने की है। इसके लिए व्यक्ति को खुद प्रयास करना होगा। संगठनों का दायित्व यह बनता है कि वे अपने कार्मिकों को ऐसा वातावरण उपलब्ध कराएं जिसमें उनकी सृजनशीलता उभरकर सामने आए। आज कार्मिकों का चयन अथवा उनकी पदोन्नति पर विचार करते समय संगठन उनमें सृजनशीलता होने को विशेष महत्व देते हैं।

निर्णय कौशल

एक व्यक्ति या संगठन का भविष्य बहुत हद तक उसके द्वारा लिए गए निर्णयों पर निर्भर करता है। संगठन में भी निर्णय व्यक्तियों द्वारा ही लिए जाते हैं। निर्णय लेने की कुशलता एक परिपक्वता की मांग करती है जिसमें शामिल हैं – निर्णय से जुड़े सभी पहलुओं की समझ, विकल्पों की तलाश, विकल्पों की परख तथा अंत में सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव। निर्णय युक्तिसंगत, सुविचारित और पूर्वाग्रहों से मुक्त होने चाहिए। निर्णय लेने के लिए कतिपय सूचनाओं व जानकारियों की जरूरत होती है, इन्हें जुटाने में व्यक्ति को सक्षम होना चाहिए। कई स्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं जहां निर्णय लेना तो एक बाध्यता हो पर इस हेतु जरूरी सभी जानकारियाँ मौजूद न हों। आवश्यक तथ्यों एवं पर्याप्त जानकारियों के अभाव में निर्णय लेना आज के समय की जरूरत बन गई है जो निर्णय कौशल का एक अंग है।

कोई भी व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि उसके द्वारा लिए गए सभी निर्णय हमेशा सही होंगे। निर्णय गलत भी हो सकते हैं पर निर्णय कौशल की पहचान यह है कि निर्णय लेने में गलतियाँ कम से कम हों। गलत निर्णयों पर पछताने की बजाय कोशिश उनसे सीख लेने की होनी चाहिए। एक विद्वान ने कहा है – निर्णय कुशलता अनुभवों से आती है और अनुभव गलत निर्णयों से मिलता है। समस्याएँ हल करना और निर्णय लेना प्रबंधन के दैनंदिन कार्य हैं और प्रबंधकीय दायित्व निभाने वालों के लिए यह सॉफ्ट स्किल्स विशेष रूप से उपयोगी है।

समय प्रबंधन

समाज में और संगठनों में भी कम ही लोग ऐसे हैं जो समय की कमी की शिकायत न करते हों। वे ऐसा महसूस करते हैं कि उनके पास करने को ज्यादा कुछ है पर समय उतना नहीं है। अतः कार्य के लंबित रहने या इसके पूरा न होने के लिए वे बहुत सरलता से समय की कमी को कारण बता देते हैं। ऐसे लोग अपने को काफी व्यस्त भी महसूस करते हैं। ऐसे लोग बाहर देखें तो पाएंगे कि उनसे कहीं अधिक व्यस्त लोग हैं जिनकी उत्पादकता एवं उपलब्धियां ज्यादा हैं पर वे समय की कमी का रोना नहीं रोते। इस उदाहरण से समय प्रबंधन की सॉफ्ट स्किल की उपयोगिता समझी जा सकती है। यह स्किल हमें समझाती है कि समय की उपलब्धता के मामले में सभी बराबर हैं। दिन और रात मिलकर सबको 24 घंटों का समय मिला हुआ है। फर्क आता है समय इस्तेमाल करने के तरीके से। समय प्रबंधन में कुशल उन्हें मानेंगे जो अपनी प्राथमिकताओं को समझते हैं और अपने विभिन्न कार्यों के लिए समय का आबंटन तदनुसार करते हैं। ऐसे लोग समय की कीमत पहचानते हैं और महत्वहीन एवं अनुत्पादक कार्यों में अपना समय नहीं गंवाते। सफल लोगों में अनेक विशेषताएँ होती हैं। इनमें एक विशेषता यह है कि वे हर पल का सदुपयोग करते हैं, उन्हें जरूरी और गैर जरूरी का अंतर मालूम होता है, उनका ध्यान अपने लक्ष्य पर केंद्रित होता है और वे समझते हैं कि समय की बचत कहाँ और कैसे की जा सकती है। लोगों में बहुत सी क्षमताएँ व कुशलताएँ हो सकती हैं, पर समय प्रबंधन के बगैर इन क्षमताओं व कुशलताओं का पूरा लाभ नहीं लिया जा सकता। समय प्रबंधन का वास्तविक अर्थ है समय के सापेक्ष अपना प्रबंधन करना।

सकारात्मक सोच

लोगों की सोच सकारात्मक हो सकती है और नकारात्मक भी। सकारात्मक सोच वालों को आशावादी कहा जा सकता है और नकारात्मक सोच वालों को निराशावादी। सकारात्मक सोच को विकसित करने पर बहुत सा साहित्य लिखा गया है। किसी ने यह नहीं बताया कि सोच को नकारात्मक कैसे बनाएँ। इससे यह स्पष्ट है कि समाज, देश व दुनिया को सकारात्मक सोच एवं आशावादिता की जरूरत है।

सकारात्मक सोच वाले लोग प्रयास करने में विश्वास रखते हैं और जानते हैं कि प्रयासों से परिणाम हासिल किए जा सकते हैं। वे भविष्य की बेहतर तस्वीर देखने में यकीन रखते हैं और इस तस्वीर तक पहुँचने या इसे हासिल करने में अपना श्रम लगाते हैं। उनका आशावाद यथार्थ को ध्यान में रखकर होता है। उनके लक्ष्य व्यावहारिक होते हैं। सकारात्मक सोच मुश्किलों के सामने व्यक्ति को खड़ा रखती है। किसी भी महत्वपूर्ण लक्ष्य की राह में मुश्किलों का आना सामान्य सी बात है और लक्ष्य प्राप्ति के लिए मुश्किलों का सामना करने को तैयार रहना चाहिए, इस बात को समझते हुए सकारात्मक सोच रखने वाले लोग बाधाओं से जूझने को तैयार रहते हैं। छोटी मुश्किलों को पार करना उन्हें बड़ी मुश्किलों से लड़ने में समर्थ बनाता है।

परिणाम में यकीन होना सकारात्मक सोच वालों को लाभ की स्थिति में रखता है। जब परिणाम में उम्मीद रखकर कार्य किया जाता है तो वह मन से होता है। जब मन और जान लगाकर काम करते हैं तो सफल होने की संभावना ज्यादा होती है। सफलता व्यक्ति का आत्मविश्वास बढ़ाती है और आत्मविश्वास के साथ कार्य करता हुआ वह सफलता की नई मंजिलें चढ़ता जाता है। नकारात्मक सोच वाले लोगों को परिणाम मिलने का भरोसा नहीं रहता, फिर उनके प्रयास भी बेमन से होते हैं। इस तरह काम करने से सफलता की बजाय असफलता ज्यादा मिलती है, असफल होना व्यक्ति का आत्मविश्वास कम कर देता है। इसलिए व्यवहार विज्ञानी सकारात्मक सोच होने पर ज्यादा ज़ोर देते हैं तथा इसे एक महत्वपूर्ण सॉफ्ट स्किल मानते हैं।

परिवर्तनों के साथ ताल–मेल

कहते हैं आज के समय में केवल एक चीज स्थिर है और वह है परिवर्तन। परिवर्तनों के इस दौर में पुरानी मान्यताओं, दृष्टिकोणों आदि की समीक्षा जरूरी हो गई है। बाज़ार के समीकरण बदल रहे हैं और ग्राहकों की जरूरतें व प्राथमिकताएँ पहले जैसी नहीं रहीं। अतः सोच को परिवर्तनों के अनुसार ढालना होगा और ऐसी युक्तियाँ निकालनी होंगी जो समकालीन हों और नए परिवेश से मेल खाती हों। साथ ही परिवर्तनों को स्वीकार या अंगीकार करने, परिवर्तनों में छिपे अवसरों को पहचानने की क्षमता जरूरी है। उदार, लचीला एवं परिवर्तनोन्मुख दृष्टिकोण आज के समय की एक अत्यधिक वांछित सॉफ्ट स्किल है जिसे सभी प्रगतिशील संगठन अपने कार्मिकों में देखना चाहते हैं। अपनी जनशक्ति की इस स्किल की बदौलत संगठन बदलावों एवं चुनौतियों का सामना ज्यादा अच्छी तरह से कर सकते हैं।

विभिन्न सॉफ्ट स्किल्स के उपर्युक्त वर्णन से हम सेवा उद्योग में इनके महत्व को समझ सकते हैं। बैंकिंग सेवा उद्योग के सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से है। सॉफ्ट स्किल्स की जरूरत बैंकिंग में हमेशा से थी पर बैंकिंग का बदला स्वरूप आज इनकी और अधिक मांग करता है। काउंटर पर बैठे लोगों में संप्रेषण कौशल हो तो ग्राहकों को जल्दी आकर्षित किया जा सकता है। टीम भावना हमें कार्मिकों की विविध कुशलताओं का पूरा लाभ उठाने का अवसर देती है क्योंकि बैंक की प्रत्येक इकाई में लोगों को मिल–जुल कर काम करना पड़ता है। सृजनशीलता हो तो बैंक के उत्पादों व सेवाओं में नई खूबियाँ जोड़ी जा सकती हैं और कारोबार के नए तरीके निकाले जा सकते हैं। निर्णय कौशल बैंक में कार्य–पद्धति को सुगम बनाने के साथ समय बचाता है। समय प्रबंधन उत्पादकता बढ़ाने तथा संसाधनों का उपयुक्ततम उपयोग करने में हमारी मदद करता है। सकारात्मक सोच तथा परिवर्तनों के साथ ताल–मेल बिठाने की क्षमता बैंक के लक्ष्यों को करीब लाने में सहायक साबित हो सकती है।

सॉफ्ट स्किल्स की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए आज प्रायः सभी बैंक अपने कार्मिकों को इन स्किल्स में प्रशिक्षित कर रहे हैं। आने वाले समय में इस प्रशिक्षण का महत्व और बढ़ेगा।

❍❍❍

ग्रामीण भारत का वित्तीय समावेशन – समावेशी विकास की अनिवार्यता

निधि चौधरी
भारतीय प्रशासनिक सेवा

"आर्थिक आजादी का अर्थ है हर व्यक्ति का आर्थिक उत्थान।"

महात्मा गांधी

आजादी के 65 सालों बाद भी देश की लगभग 50 फीसदी जनसंख्या की पहुँच औपचारिक वित्तीय क्षेत्र तक नहीं है। देश के गाँवों में स्थिति और भी दयनीय है क्योंकि लगभग 80 फीसदी गाँवों में कोई भी बैंक शाखा नहीं है जिससे ग्रामीणों की देशी साहूकारों पर निर्भरता बरकरार है। पिछले एक दशक से देश की अर्थव्यवस्था ने अप्रत्याशित रूप से ऊँची विकास दर प्राप्त की किंतु इस विकास का लाभ देश के ग्रामीण इलाकों तक नहीं पहुंच पाया क्योंकि विकास की यह नई कहानी मुख्य रूप से वित्तीय तंत्र द्वारा लिखी गई जो कि देश के शहरी इलाकों में ही संकेंद्रित था। यही कारण है कि आज ग्रामीण भारत के वित्तीय समावेशन को देश में समावेशी विकास की स्थापना के लिए अत्यंत आवश्यक माना जा रहा है। सरकार ने भी मनरेगा सहित कई अन्य ग्राम विकास योजनाओं में सीधे लाभार्थी के बैंक खाते में रुपया डालना शुरू किया है। साथ ही, पिछले दो सालों से स्वाभिमान योजना के तहत देश के 2000 से अधिक जनसंख्या वाले सभी गाँवों को बैंकों से जोड़ने की कोशिश की जा रही है। हाल ही में घोषित बजट 2013–14 में सरकार द्वारा पोस्ट बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना के संबंध में संकेत दिया गया है, यदि ऐसा हुआ तो डाक विभाग के गाँव–गाँव में फैले तंत्र का इस्तेमाल वित्तीय समावेशन में किया जा सकेगा। फरवरी 2013 में रिज़र्व बैंक द्वारा नए बैंकों के प्रवेश संबंधी अंतिम दिशानिर्देश जारी किए गए जिनके अनुसार सभी नए स्थापित किए जाने वाले बैंकों को अपनी कम से कम 25 फीसदी शाखाएँ ग्रामीण इलाकों में खोलनी होंगी। इन सबसे स्पष्ट है कि देश में नीति निर्माताओं द्वारा ग्रामीण वित्तीय समावेशन को समावेशी विकास की अनिवार्यता के रूप में देखा जा रहा है।

क्या है वित्तीय समावेशन?

वित्तीय समावेशन को हमारे देश में प्रायः बैंक खातों तक पहुँच के रूप में देखा जाता है जबकि इसमें बैंकिंग के अलावा अन्य वित्तीय सेवाओं मसलन पेंशन, बीमा व पूंजी बाजार के उत्पादों और सेवाओं से वंचित लोगों को उनकी परिधि में लाना भी शामिल है। वित्तीय समावेशन शब्दावली का प्रयोग भारतीय रिज़र्व बैंक ने वार्षिक नीति, 2005–06 के वक्तव्य में पहली बार किया। वर्ष 2008 में वित्तीय समावेशन के लिए गठित समिति के अध्यक्ष डॉ. सी. रंगराजन के शब्दों में "कम आय व कमजोर वर्गों के लिए ऋण व वित्तीय सेवाओं तक सुगमतापूर्वक पहुँच ही वित्तीय समावेशन है।" दूसरे शब्दों में, वित्तीय समावेशन का अर्थ अब तक वित्तीय सेवाओं एवं उत्पादों से वंचित रहे लोगों तक सुविधापूर्वक, सरल तरीके से इनकी पहुंच सुनिश्चित करना है।

क्यों जरूरी है ग्रामीण भारत का वित्तीय समावेशन?

हमारे देश में समावेशी विकास तब तक संभव नहीं है जब तक देश की लगभग 70 फीसदी आबा दी, जो गाँवों में रहती है, को वित्तीय तंत्र से न जोड़ा जाए। ग्रामीण भारत के वित्तीय समावेशन की समावेशी विकास में जरूरत निम्नलिखित कारणों से है –

- गांधीजी द्वारा देखा गया ग्राम स्वराज का सपना वित्तीय समावेशन के बिना संभव नहीं है क्योंकि यह ग्रामीण भारत के विकास की राह में विद्यमान सबसे बड़ी बाधा आर्थिक आत्म–निर्भरता के लिए जरूरी ऋण, बचत, बीमा, पेंशन इत्यादि वित्तीय सेवाओं एवं उत्पादों की कमी को दूर करता है।
- वित्तीय समावेशन ग्रामीणों की बचत को बैंकिंग के माध्यम से चैनलाइज करेगा जिससे ग्रामीणों को

उचित रिटर्न एवं सुरक्षा मिलेगी तथा बचत की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलेगा।

- देश के तकरीबन 50 फीसदी किसान परिवार संगठित क्षेत्र के जरिए कर्ज नहीं पाते हैं। परिणामतः उन्हें बहुत ऊंची कीमतों पर तथा अपनी जमीनें गिरवी रखकर साहूकारों से ऋण लेना पड़ता था जिसको चुका न पाने की स्थिति में 1997 से 2009 के बीच 2,16,500 किसानों ने अपनी स्थिति से तंग आकर आत्महत्या का अंतिम विकल्प चुना। वित्तीय समावेशन इस स्थिति को बदल सकता है क्योंकि ग्रामीणों को सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं के तहत सब्सिडी, सस्ते ऋण इत्यादि सीधे बैंक खातों में मिल सकेंगे और साहूकारों के पास अपनी जमीन, श्रम इत्यादि को गिरवी रखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।
- आज एटीएम, सीबीएस, इंटरनेट बैंकिंग, रियल टाइम सेटलमेंट (RTGS), ईसीएस इत्यादि जितनी नई सेवाएं ग्राहकों को प्राप्त हो रही हैं वे नगरीय ग्राहकों तक ही सीमित हैं जिससे शहरों और ग्रामीणों के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। वित्तीय समावेशन इस खाई को पाटने का काम करेगा।
- हमारे देश में आज भी गैर–नकदी आधारित अंतरण अर्थात बार्टर का प्रचलन गांवों में देखा जा सकता है जो कि अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का सूचक है। इसलिए वित्तीय समावेशन बहुत आवश्यक है।
- वित्तीय समावेशन गाँवों में स्वयं सहायता समूहों की क्रांति की पहुंच स्थापित करेगा जिससे महिलाओं के सशक्तीकरण, ग्रामीणों की सामुदायिक शक्ति के विकास में सहायता मिलेगी और ग्रामीण उद्योग–धंधों का भी विकास होगा।
- बैंक खाता न होने की स्थिति में अधिकांश वित्तीय संचालन बैंकों के दायरे से बाहर होते हैं जिससे भारतीय रिज़र्व बैंक का मौद्रिक नियमन भी लागू नहीं हो पाता और महंगाई पर काबू पाने के सारे प्रयास असफल रह जाते हैं।
- वित्तीय समावेशन से न केवल गांवों की वित्तीय आवश्यकताएं पूरी होती हैं, बल्कि वित्त की शक्ति से गाँवों का सामाजिक उत्थान भी होता है। महिला स्वयं सहायता समूहों की सूक्ष्म वित्त तक पहुंच ने देश के दक्षिणी हिस्सों में सामाजिक परिवर्तन में अहम भूमिका निभाई है। बांग्लादेश में भी ग्रामीण बैंक ने महिलाओं की स्थिति में बदलाव लाकर सामाजिक विकास की राह प्रशस्त की है। ऐसा ही श्रीलंका, केन्या इत्यादि में भी देखा गया है।

ग्रामीण वित्तीय समावेशन के लिए उपाय

सरकार एवं रिज़र्व बैंक द्वारा देश के सभी ग्रामीण इलाकों को वित्तीय तंत्र की परिधि में लाने के लिए अनेक प्रयास किए जाते रहे हैं मसलन बैंकों का राष्ट्रीयकरण, प्राथमिकता–प्राप्त क्षेत्र को ऋण, कृषि ऋणों की माफी, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, सहकारी बैंक इत्यादि। किंतु इन प्रयासों के बावजूद ग्रामीण इलाकों का संतोषजनक वित्तीय समावेशन नहीं हुआ जिस पर पिछले एक दशक से विशेष जोर दिया जा रहा है। इस दिशा में हाल में नो–फ्रिल खातों, बॉयोमेट्रिक एटीएम, व्हाइट लेबल एटीएम, बैंकिंग सुविधादाता, बैंकिंग प्रतिनिधि, नए बैंकिंग लाइसेंस, महिला बैंक, पोस्ट बैंक इत्यादि द्वारा ग्रामीण भारत को वित्तीय तंत्र में शामिल करने के प्रयास किए जा रहे हैं। नीचे दिए गए बिंदुओं में ग्रामीण वित्तीय समावेशन की दिशा में अब तक अपनाए गए कुछ महत्वपूर्ण प्रयास दिए गए हैं –

- **प्राथमिकता–प्राप्त क्षेत्र –** रिज़र्व बैंक द्वारा वर्ष 1972 में पहली बार प्राथमिकता–प्राप्त क्षेत्र को ऋण देने संबंधी प्रावधान औपचारिक रूप से बैंकों पर लागू किए गए थे। मौजूदा नियमों के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को समायोजित बैंक ऋण (Adjusted Bank Credit) का 40 प्रतिशत या तुलनपत्र से इतर एक्सपोजर (Off-Balance Sheet Exposure) के बराबर ऋण राशि, इनमें से जो भी अधिक हो, के बराबर ऋण प्राथमिकता–प्राप्त क्षेत्र को देना होता है। पिछले दो वर्षों में इस योजना के तहत बैंकों का प्रदर्शन इस चार्ट में दिया गया है–

चार्ट 1 – मार्च अंत में प्राथमिकता–प्राप्त क्षेत्र संबंधी ऋण की स्थिति

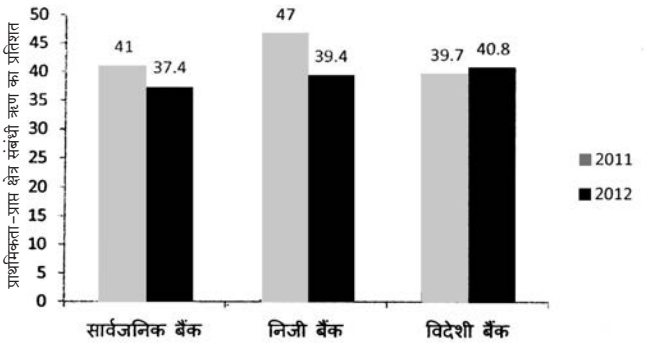

स्रोत – भारतीय रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट, 2011–12

- **किसान क्रेडिट कार्ड –** किसान क्रेडिट कार्ड योजना का उद्देश्य बैंकिंग व्यवस्था से किसानों को समुचित और यथासमय सरल एवं आसान तरीके से आर्थिक सहायता दिलाना है ताकि खेती एवं जरूरी उपकरणों की खरीद के लिए उनकी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। मार्च 2012 के अंत तक 2 करोड़ से अधिक किसान क्रेडिट कार्ड जारी किए जा चुके हैं जिसके तहत बकाया ऋण 165.15 करोड़ रुपए है। किसान क्रेडिट कार्ड योजना की ग्रामीण विकास और वित्तीय समावेशन में भूमिका को देखते हुए रिज़र्व बैंक ने इस कार्ड को एटीएम एवं हैंड हेल्ड डिवाइस के रूप में भी इस्तेमाल किए जाने के निर्देश दिए हैं।
- **स्वरोजगार क्रेडिट कार्ड योजना –** नाबार्ड द्वारा इस योजना के तहत ग्रामीण और अर्ध–शहरी क्षेत्रों के छोटे दस्तकारों, हथकरघा बुनकरों, स्वनियोजित व्यक्तियों, स्वयं सहायता समूहों को कम लागत पर कार्यशील ऋण प्रदान किया जाता है। मार्च 2010 के अंत तक बैंकों द्वारा 4,254.88 करोड़ रुपए की ऋण सीमा सहित 10.48 लाख कार्ड जारी किए जा चुके हैं।
- **एसएचजी बैंक लिंकेज कार्यक्रम –** नाबार्ड द्वारा प्रकाशित ''भारत में सूक्ष्म वित्त की स्थिति 2011–12'' के अनुसार इस कार्यक्रम ने लगभग 10.3 करोड़ घरों को बैंकिंग क्षेत्र से जोड़ा है। वर्ष 1992 में महज 500 एसएचजी को बैंकों से जोड़कर प्रारंभ हुआ यह कार्यक्रम आज दो दशकों बाद लगभग 80 लाख एसएचजी को बैंकिंग क्षेत्र से जोड़कर ''दुनिया का सबसे बड़ा और सबसे तेजी से बढ़ता सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम'' बन चुका है। इस योजना की पिछले तीन वर्षों में प्रगति नीचे तालिका में दी गई है –
- **ग्रामीण नवोन्मेष निधि –** अक्तूबर 1995 में नाबार्ड के तत्वावधान में गांवों में निर्धनता निवारण के गैर–परंपरागत नवोन्मेष को बढ़ावा देने के लिए ग्रामीण नवोन्मेष निधि (Rural Innovation Fund) की स्थापना की गई। मार्च 2010 तक नाबार्ड द्वारा ग्रामीण नवोन्मेष निधि के तहत 38 करोड़ रुपए की प्रतिबद्धता युक्त 252 परियोजनाएं मंजूर की गईं।
- **नो फ्रिल्स खाते –** भारतीय रिज़र्व बैंक ने वर्ष 2005 में आम जनता को बैंकिंग से जोड़ने के लिए सभी बैंकों को अपनी शाखाओं के जरिए नो–फ्रिल्स खाते खोलने के आदेश जारी किए। जून 2010 तक के आंकड़ों के अनुसार

तालिका 1 – मार्च अंत में स्वयं सहायता समूहों की बचत एवं ऋण के मामले में स्थिति

	2009–10		2010–11		2011–12	
	संख्या (लाख में)	राशि (करोड़ रु. में)	संख्या (लाख में)	राशि (करोड़ रु. में)	संख्या (लाख में)	राशि (करोड़ रु. में)
एसएचजी द्वारा की गई बचत	69.53	6,198.71	74.62	7,016.30	79.60	6,551.41
बैंक द्वारा वितरित ऋण	15.87	14,453.3	11.96	14,547.73	11.98	16,534.77
बैंकों में बकाया ऋण	48.51	28,038.28	47.87	31,221.17	43.54	36,340.00

स्रोत – नाबार्ड

देश में कुल 3.9 करोड़ नो फ्रिल्स खाते खोले जा चुके हैं। हाल ही में, रिज़र्व बैंक ने सभी बैंकों को नो–फ्रिल्स खाते को बेसिक बैंकिंग खाते के रूप में पुनर्गठित करने के निर्देश दिए हैं जिसके बाद शून्य या नगण्य शेष के साथ खुलने वाला यह बैंक खाता सभी लोगों के लिए उपलब्ध होगा।

- **वित्तीय साक्षरता एवं ऋण परामर्श केंद्र (FLCC) –** गांवों में वित्तीय समावेशन तभी संभव है जबकि ग्रामीणों की वित्तीय साक्षरता बढ़े। इस दिशा में, रिज़र्व बैंक द्वारा फरवरी 2009 में सभी बैंकों को वित्तीय साक्षरता एवं ऋण परामर्श केंद्र (Financial Literacy & Credit Counselling Centre - FLCC) खोलने के दिशानिर्देश जारी किए गए। मार्च 2012 तक देश में 429 एफएलसीसी खोले जा चुके हैं। रिज़र्व बैंक ने पिछले साल सभी 630 लीड बैंक प्रबंधकों के कार्यालयों में वित्तीय साक्षरता केंद्र खोलने का निर्देश दिया है।
- **राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम) –** जून 2011 में सरकार द्वारा स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना को पुनर्गठित कर राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन का प्रारंभ किया गया जिसके तहत स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से देश की 2.5 लाख ग्राम पंचायतों और छह लाख गांवों के 7 करोड़ ग्रामीण गरीब परिवारों को स्वरोजगार के लिए तैयार किया जाएगा।
- **कारोबार सुलभकर्ता (Business Facilitators) –** भारतीय रिज़र्व बैंक के निर्देशानुसार कारोबार सुलभकर्ता के लिए गैर सरकारी संगठन, किसान क्लब, सहकारी संस्थान, पोस्ट ऑफिस, बीमा एजेन्ट, ग्रामीण विकास केंद्र, कृषि विकास केंद्र, कृषि विज्ञान केंद्र, केवीआईसी या केवीआईबी के संगठन, सेवानिवृत्त बैंक अधिकारी, भूतपूर्व सैनिक और सामाजिक संगठन कारोबार सुलभकर्ता के रूप में कार्य कर सकते हैं।
- **कारोबार प्रतिनिधि (Business Correspondent) –** इसमें गैर सरकारी संगठन, सामाजिक या सहकारी संगठन, पोस्ट ऑफिस, किसान क्लब, ओबीसी ग्रामीण विकास ट्रस्ट और व्यक्तिगत रूप से कार्य में रुचि रखने वाले व्यक्ति कारोबार प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर सकते हैं। कारोबार सुलभकर्ता और प्रतिनिधि में केवल ऋण सुविधाएं प्रदान करने की सुविधाओं को लेकर अंतर है। कारोबार सुलभकर्ता गैर वित्तीय सेवाएं प्रदान करता है जबकि कारोबार प्रतिनिधि मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है और कुछेक नकदी संबंधी कार्य भी कर सकता है। रिज़र्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार मार्च 2012 के अंत तक 95,767 कारोबार प्रतिनिधि बैंकों द्वारा नियुक्त किए जा चुके हैं।
- **बॉयोमेट्रिक एटीएम –** इसके जरिए बैंक कम पढ़े–लिखे, अनपढ़ या बुजुर्ग लोगों के लिए एटीएम संचालनों को सुरक्षित करने का प्रयास कर रहे हैं। बॉयोमेट्रिक एटीएम में सुरक्षा उपायों के साथ सरलता एवं लचीलेपन का अनूठा समन्वय है। देश के ग्रामीण इलाकों में साक्षरता की कमी के मद्देनजर यह एटीएम अधिक सुरक्षित, सरल एवं उपयोग करने में सहज है।
- **मोबाइल बैंकिंग –** जनवरी 2013 के आंकड़ों के अनुसार देश में लगभग 90 करोड़ मोबाइल उपभोक्ता हैं तथा मोबाइल की पहुंच आज देश के दूरदराज के गांवों तक हो गई है। यही कारण है कि मोबाइल बैंकिंग को ग्रामीण क्षेत्रों के वित्तीय समावेशन की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जा रहा है। अक्तूबर 2012 तक रिज़र्व बैंक ने 69 बैंकों को अपने ग्राहकों को मोबाइल बैंकिंग सेवाएं उपलब्ध कराने की अनुमति दी है, जिनमें से 42 बैंक ग्राहकों को यह सेवा प्रदान करने लगे हैं। फिलहाल लगभग 1.8 करोड़ ग्राहक मोबाइल बैंकिंग सेवाओं का इस्तेमाल कर रहे हैं। स्पष्ट है कि मोबाइल बैंकिंग के विस्तार की अपार संभावनाएँ तलाशना अभी बाकी है।
- **आधार –** भारत सरकार द्वारा नंदन नीलकेणि की अध्यक्षता में अगस्त 2009 में गठित भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण (UIDAI) द्वारा वर्ष 2010 से आधार संख्या जारी की जा रही है। 02 अप्रैल 2013 तक के आँकड़ों के अनुसार देश में अब तक 31.18 करोड़ आधार कार्ड जारी किए जा चुके हैं। अगले वर्ष तक 60 करोड़ लोगों को आधार संख्या जारी किए जाने का अनुमान है। प्राधिकरण के अनुसार इस संख्या को व्यक्ति

की पहचान व आवास का प्रमाण माना जा सकता है। इससे उन लोगों तक बैंकिंग सेवाओं की पहुंच बढ़ सकेगी जो कि केवाईसी प्रमाण पत्रों के अभाव में बैंक खाता नहीं खुलवा पाते हैं। सरकार ने हाल ही में आधार संख्या को सब्सिडी अंतरण से जोड़ने की घोषणा भी की थी।

- **ऊँट पर बैंक –** ग्रामीण इलाकों में वित्तीय समावेशन की पहुंच स्थापित करने के लिए राजस्थान में ऊँट की पीठ पर चलने वाला एक अद्भुत बैंक है जो कि स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर और जयपुर की एक शाखा है। यह बैंक पिछले एक दशक से भी अधिक समय से जैसलमेर की जनता और पर्यटकों को ध्यान में रखकर बनाया गया है। इस ऊँट पर बैंक के दो कर्मचारी सवार रहते हैं और शहर के पर्यटन स्थलों की फेरी लगाते रहते हैं। ऊँट पर यह बैंक विदेशी मुद्रा के लेन-देन का कारोबार करता है और मौके पर ही पर्यटकों की पाउंड, डॉलर और यूरो जैसी मुद्राएँ परिवर्तित कर देता है।
- **बाइक पर बैंकिंग –** भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के सबसे बड़े बैंक भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) ने वित्तीय समावेशन को गांव-गांव तक पहुंचाने के लिए जनवरी 2011 में आंध्र प्रदेश के मेडक जिले के चेरियाल गांव से 'बैंक ऑन बाइक' सेवा की शुरुआत की है।
- **स्वाभिमान योजना –** केन्द्र सरकार द्वारा वर्ष 2011 से लागू इस योजना के तहत देश के हर जिले के ऐसे सभी गांवों में लोगों के बैंक खाते खुलवाए जाने हैं, जिनकी आबादी 2000 से ज्यादा है।
- **सब्सिडी का नकदी अंतरण –** भारत सरकार ने बजट 2012-13 में यह घोषणा की थी कि सरकार द्वारा दी जाने वाली सब्सिडी को आधार से जोड़कर सीधे बैंक खातों में नकदी के रूप में अंतरित किया जाएगा। इस घोषणा से सब्सिडी प्राप्त करने वाले सभी लाभार्थियों को बैंकिंग तंत्र से जोड़े जाने का सुसंकेत भी मिलता है जिससे वित्तीय समावेशन को बढ़ावा मिलेगा। इससे पहले भी मनरेगा के तहत मजदूरी को बैंक खातों में डालने से कई गरीब ग्रामीणों को बैंकिंग से जोड़ने में सफलता मिल चुकी है।
- **महिला बैंक –** हमारे देश में ग्रामीण इलाकों में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति बहुत ही बदतर है और इसीलिए महिलाओं का वित्तीय समावेशन ग्रामीण भारत के विकास के लिए एक अनिवार्यता है। इसी कारण बजट 2013-14 में 1000 करोड़ रुपए की राशि से महिला बैंक की स्थापना की घोषणा की गई है जो कि छोटे स्तर की महिला उद्यमियों को ऋण उपलब्ध करवाएगा। उम्मीद करनी चाहिए कि महिला बैंक ग्रामीण इलाकों में कार्यरत महिला स्वयं सहायता समूहों, घरेलू एवं लघु उद्यमों के विकास के लिए महत्वपूर्ण साबित होगा।
- **पोस्ट बैंक ऑफ इंडिया –** हमारे देश में आज भी लगभग पांच लाख गांवों तक बैंकिंग तंत्र की पहुंच नहीं है, वहीं 31 मार्च 2009 तक भारतीय डाकघर की पूरे देश में 1,55,015 से अधिक शाखाएँ थीं, जो कि सभी वाणिज्यिक बैंकों की शाखाओं से तकरीबन दुगुनी थी। उल्लेखनीय है कि इनमें से 89.76 प्रतिशत अर्थात् 1.39 लाख शाखाएँ ग्रामीण इलाकों में हैं। स्पष्ट है कि बजट 2013-14 में प्रस्तावित पोस्ट बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना होने से ग्रामीण इलाकों के वित्तीय समावेशन का स्वप्न पूरा किया जा सकेगा।
- **नए बैंकिंग लाइसेंस –** रिज़र्व बैंक द्वारा फरवरी 2013 में नए बैंकों को लाइसेंस दिए जाने संबंधी अंतिम दिशानिर्देश जारी किए गए जिनके अनुसार नए बैंकों को अपनी कम से कम 25 फीसदी शाखाएँ ऐसे ग्रामीण केंद्रों में खोलनी होंगी जहां बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। इसके अलावा नए बैंकों को प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्र संबंधी निर्देशों का भी पालन करना होगा। स्पष्ट है कि नए बैंकिंग लाइसेंस का फायदा कई ग्रामीण इलाकों के वित्तीय तंत्र से जुड़ने के रूप में सामने आएगा।

ग्रामीण वित्तीय समावेशन की राह में चुनौतियाँ

यद्यपि ग्रामीण वित्तीय समावेशन की समावेशी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका के मद्देनज़र सरकार एवं रिज़र्व बैंक द्वारा अनेक योजनाएं एवं कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं तथापि भारत के 6 लाख

से अधिक गांवों को औपचारिक वित्तीय क्षेत्र की परिधि में लाना कोई आसान कार्य नहीं है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोटी, कपड़ा और मकान की बुनियादी सुविधाओं से वंचित हमारे गांव विकास के मानदंड पर बहुत पीछे छूटे हुए हैं जहां वित्तीय जागरूकता एवं वित्तीय साक्षरता का अभाव भी चरम पर है। स्पष्ट है कि गांवों में वित्तीय समावेशन की राह में अनेक चुनौतियां आती हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

- हमारे गांवों में आज भी 40 फीसदी से अधिक जनता गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन कर रही है। अधिकांश ग्रामीण भूमिहीन कृषि मजदूर हैं जो अपनी वित्तीय जरूरतों के लिए देशी साहूकारों पर अधिक निर्भर करते हैं। स्पष्ट है कि ग्रामीण भारत में व्याप्त गरीबी को कम किए बिना तथा ग्रामीणों के संसाधनों में वृद्धि के बिना वित्तीय समावेशन सफल नहीं हो सकता।
- वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार आज भी गांवों में साक्षरता दर केवल 68.9 फीसदी है वहीं वित्तीय साक्षरता की स्थिति तो और भी चिंतनीय है। ऐसी स्थिति में, यदि ग्रामीणों के बैंक खाते खोल भी दिए गए तब भी वित्तीय जागरूकता के अभाव में वे वित्तीय तंत्र का सही उपयोग नहीं कर पाएंगे, बल्कि बैंकों की कागजी कार्रवाई, प्रक्रियाओं के कारण उसके प्रति निराशा का भाव बढ़ने का खतरा होगा।
- कारोबार सुलभकर्ता एवं प्रतिनिधि (बीसी व बीएफ) की योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि उन्हें समुचित मानदेय, उचित प्रशिक्षण एवं बैंक की ग्राहक सेवा नीतियों के प्रति पूरी तरह से तैयार नहीं किया जाए। अन्यथा बीसी व बीएफ के द्वारा ग्रामीण ग्राहकों से अतिरिक्त प्रभार वसूलने, ग्राहकों को सही सेवाएँ नहीं देने संबंधी शिकायतें बढ़ सकती हैं।
- वित्तीय समावेशन की ग्रामीण विकास में भूमिका को राज्य सरकारों एवं पंचायती राज संस्थाओं द्वारा समझा नहीं गया है, जिनका इस मिशन में आशानुरूप सहयोग न मिलना एक बहुत बड़ी चुनौती है।
- पिछले कुछ सालों में देश में कई गैर–पंजीकृत सहकारी बैंक, चिट फंड इत्यादि द्वारा गांवों में धोखाधड़ी करने के मामले बढ़े हैं। इसके अलावा नाइजीरिया से संचालित लॉटरी घोटाले में भी देश के कई निर्दोष ग्रामीणों ने अपनी पूंजी गंवाई है जिसके कारण वित्तीय मामलों में शंका और भय का माहौल बढ़ा है।
- नो–फ्रिल्स खाते, बॉयोमेट्रिक एटीएम, हैंड हेल्ड डिवाइस इत्यादि के माध्यम से वित्तीय समावेशन के प्रयास पूरी तरह सफल नहीं हो पाए हैं क्योंकि इन खातों का संचालन करने के लिए पर्याप्त वित्तीय एवं तकनीकी जानकारी, सुरक्षा संबंधी ज्ञान इत्यादि का अभाव पाया जाता है।
- ग्रामीण वित्तीय समावेशन में सबसे बड़ी चुनौती ग्रामीण महिलाओं का सामाजिक–आर्थिक पिछड़ापन है। हमारे देश में महिलाएं वित्तीय तंत्र में सबसे कम भागीदार हैं और उन्हें विकास का लाभ भी नहीं मिल पा रहा है। महिलाओं के वित्तीय समावेशन के बिना समावेशी विकास मात्र एक दिवास्वप्न होगा।

सारांश

सार रूप में हम कह सकते हैं कि वित्तीय समावेशन ग्रामीण विकास की दिशा में एक उत्प्रेरक की तरह कार्य करता है। वित्त की शक्ति से परिचय ग्रामीणों को बचत, ऋण, निवेश, पेंशन, बीमा इत्यादि के लाभ से अवगत कराता है। वित्तीय तंत्र का हिस्सा बनकर गाँव के लोग सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न ग्रामीण विकास परियोजनाओं मसलन भारत निर्माण, मनरेगा, जननी सुरक्षा योजना इत्यादि का उचित लाभ उठा सकेंगे। यह जरूरी है कि वित्तीय समावेशन के लिए सरकार, निजी क्षेत्र, गैर–सरकारी संगठन, सिविल सोसाइटी, औद्योगिक घराने और सामाजिक संस्थाएं एकजुट होकर कार्य करें तभी देश के 6 लाख से अधिक गांवों को वित्तीय तंत्र की परिधि में लाया जा सकेगा। ग्रामीण वित्तीय समावेशन द्वारा रिज़र्व बैंक एवं सरकार ग्रामीणों तक आर्थिक अवसर और वित्तीय पहुंच स्थापित करने का प्रयास कर रही हैं ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था में आए सकारात्मक बदलावों, ऊँची विकास दर, सुसंगठित वित्तीय प्रणाली का लाभ देश के कोने–कोने तक पहुंच सके और सही मायनों में देश में सतत और समावेशी विकास हो सके।

❍❍❍

व्यवसाय प्रतिनिधि – वित्तीय समावेशन के संवाहक

देव राज
प्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक
नई दिल्ली

विश्व बैंक की ग्लोबल फिनडेक्स रिपोर्ट, 2012[1] के अनुसार वर्ष 2011 के अंत तक देश की केवल 35 फीसदी जनसंख्या (15 से अधिक आयु) का किसी औपचारिक बैंक में खाता है वहीं महिलाओं के मामले में केवल 26 फीसदी महिलाएं बैंक खाता रखती हैं। देश के 40 करोड़ से अधिक निम्न आय वर्ग की जनता में केवल 27 प्रतिशत के पास बैंक खाता है। स्थिति देश के गांवों में और भी दयनीय है क्योंकि मार्च 2012 तक के आंकड़ों के अनुसार देश के 6 लाख से अधिक गांवों में केवल 35,364 बैंक शाखाएँ[2] हैं, जिससे ग्रामीणों की देशी साहूकारों पर निर्भरता बरकरार है। यही कारण है कि रिज़र्व बैंक एवं सरकार द्वारा बैंकिंग तंत्र की पहुंच दूर–दराज के इलाकों तक स्थापित करने के लिए अनेक उपाय किए जा रहे हैं जिनमें से एक महत्वपूर्ण उपाय है – व्यवसाय प्रतिनिधि (Business Correspondent)। खान कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर रिज़र्व बैंक ने सर्वप्रथम वर्ष 2006 में बैंकों को व्यवसाय प्रतिनिधि (Business Correspondent) के माध्यम से अपनी पहुंच स्थापित करने का निर्देश दिया। रिज़र्व बैंक के प्रोत्साहनस्वरूप व्यवसाय प्रतिनिधि का मॉडल देश में वित्तीय समावेशन के महत्वपूर्ण वाहक के रूप में विकसित हुआ है।

क्या है वित्तीय समावेशन ?

सामान्यतया वित्तीय समावेशन से अभिप्राय बैंकिंग सुविधाओं से वंचित लोगों को बैंकिंग तंत्र से जोड़ने से लिया जाता है किन्तु यह वित्तीय समावेशन की संकीर्ण परिभाषा है क्योंकि वित्तीय समावेशन की परिधि में बैंकिंग के अलावा बीमा, पेंशन, पूंजी बाजार इत्यादि भी शामिल हैं। वर्ष 2008 में वित्तीय समावेशन के लिए गठित समिति के अध्यक्ष डॉ. सी. रंगराजन ने वित्तीय समावेशन को परिभाषित करते हुए कहा था कि ''कम आय व कमजोर वर्गों के लिए ऋण व वित्तीय सेवाओं तक समय पर सुगमतापूर्वक पहुँच ही वित्तीय समावेशन है।'' दूसरे शब्दों में, वित्तीय समावेशन से अभिप्राय अब तक वित्तीय सेवाओं एवं उत्पादों से वंचित रहे वर्ग तक सुविधापूर्वक, सरल तरीके से इनकी पहुंच सुनिश्चित करना है।

व्यवसाय प्रतिनिधि का स्वरूप

बैंकिंग उद्योग में प्रयोग की दृष्टि से व्यवसाय प्रतिनिधि एक नई संकल्पना है, किन्तु इसका प्रचलन काफी पुराना है। इस संकल्पना के द्वारा वित्तीय तंत्र से असंबद्ध लोगों को इससे जोड़ने का प्रयास पहले भी किया गया है। अमेरिका में निवेश प्रणाली को बढ़ावा देने के लिए सन् 1981 से 1994 तक ''बिजनेस एक्सप्लेन स्कीम'' परिचालित की गई थी।

बांग्लादेश में भी औपचारिक बैंकिंग तंत्र से इतर ''ग्रामीण बैंक'' ने जरूरतमंदों को अनौपचारिक तरीके से बैंकिंग सेवाएं प्रदान करने का बीड़ा उठाया और स्वयं सहायता समूह के माध्यम से ग्रामीण जनता तक वित्तीय लाभ पहुंचाने का सफल प्रयास किया। भारत में भी सुश्री इला भट्ट ने अपने गैर–सरकारी संगठन ''सेवा'' के माध्यम से बहुतेरे महिला स्वयं सहायता समूहों को वित्तीय सुविधाएँ देने का कार्य किया है। इसके अलावा नाबार्ड पिछले दो दशकों से एसएचजी–बैंक लिंकेज योजना के तहत स्वयं सहायता समूहों को बैंकिंग से जोड़ने का कार्य कर रहा है। साथ ही, डाक विभाग के तंत्र द्वारा भी छोटी–छोटी बचतों को एकत्रित करने का कार्य किया जाता है। स्पष्ट है कि वित्तीय सुविधाओं का औपचारिक तंत्र के अलावा

[1] http://datatopics.worldbank.org/financialinclusion/country/india

[2] भारतीय रिज़र्व बैंक की वेबसाइट

अन्य अनौपचारिक तरीकों से उपलब्ध होना कोई नवोन्मेष नहीं है किन्तु भारत में व्यवसाय प्रतिनिधि का वर्तमान स्वरूप रिज़र्व बैंक के वर्ष 2008 में जारी परिपत्र की देन है। रिज़र्व बैंक के परिपत्र के अनुसार व्यवसाय प्रतिनिधि का स्वरूप उनके द्वारा किए जाने वाले कार्य इत्यादि को स्पष्ट किया गया है।

रिज़र्व बैंक के अनुसार गैर सरकारी संगठन, सामाजिक या सहकारी संगठन, पोस्ट ऑफिस, किसान क्लब, और व्यक्तिगत स्तर पर कार्य की रुचि रखने वाले व्यक्ति व्यवसाय प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर सकते हैं। व्यवसाय सुविधादाता और प्रतिनिधि में केवल ऋण सुविधाएं प्रदान करने की सुविधाओं को लेकर अंतर किया गया है। व्यवसाय सुविधादाता गैर–वित्तीय सेवाएं जैसे बैंक खातों के फॉर्म इत्यादि प्रदान करता है जबकि व्यवसाय प्रतिनिधि मध्यस्थ के रूप में कार्य और कुछेक नकदी संबंधी कार्य मसलन हैंड हेल्ड डिवाइस के माध्यम से नकदी देना, नकदी जमा करना, नकदी किसी और खाते में डालना इत्यादि भी करता है।

व्यवसाय प्रतिनिधि मॉडल की वर्तमान स्थिति

भारतीय रिज़र्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार सितम्बर 30, 2012 तक देश में 1,58,159 व्यवसाय प्रतिनिधि[3] नियुक्त किए जा चुके हैं जो कि 1,99,702 गांवों में बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध करवा रहे हैं। यदि इसकी तुलना गांवों में बैंक शाखाओं की संख्या से की जाए तो स्पष्ट रूप से व्यवसाय प्रतिनिधि मॉडल की अधिक गांवों तक पहुंच नज़र आती है (सारणी 1)। देश में एटीएम, पॉइंट ऑफ सेल एवं मोबाइल बैंकिंग को भी वित्तीय समावेशन की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा रहा है किन्तु इनकी पहुंच मुख्य रूप से शहरों तक ही सीमित है।

सारणी 1 – भारत में बैंकिंग अवसंरचना की स्थिति (मार्च 2012)

बैंकों की कुल शाखाएँ	96,059
गांवों में बैंकों की कुल शाखाएँ	35,364
एटीएम की संख्या	95,686
बैंकों द्वारा नियुक्त व्यवसाय प्रतिनिधियों की संख्या	1,58,159 (सितम्बर 30,2012 तक)
व्यवसाय प्रतिनिधि द्वारा कवर किए गए गांवों की संख्या	1,99,702 (सितम्बर 30, 2012 तक)
पॉइंट ऑफ सेल मशीनों की संख्या	6,35,653
मोबाइल उपभोक्ताओं की संख्या	93.6 करोड़ (जनवरी 2013 तक)
मोबाइल बैंकिंग ग्राहकों की संख्या	1.8 करोड़ (अक्तूबर 2012 तक)

स्रोत – भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति, 2011–12

व्यवसाय प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि

पिछले तीन वर्षों में गांवों में बैंकिंग आउटलेट की संख्या को देखने से स्पष्ट होता है कि व्यवसाय प्रतिनिधि की संख्या वर्ष 2010 की तुलना में लगभग तीन गुना बढ़कर मार्च 2012 में 1,47,534 हो गई है (चार्ट 1)। जैसा कि सारणी 1 से स्पष्ट है सितम्बर 2012 तक बैंकिंग प्रतिनिधि द्वारा कवर किए जा रहे गांवों की संख्या बढ़कर 1,99,702 हो गई है। स्पष्ट है कि गांवों में वित्तीय समावेशन को यथार्थ बनाने के लिए यह जरूरी है कि व्यवसाय सुविधादाता का उचित उपयोग किया जाए।

चार्ट 1 – गांवों में बैंकिंग आउटलेट की संख्या

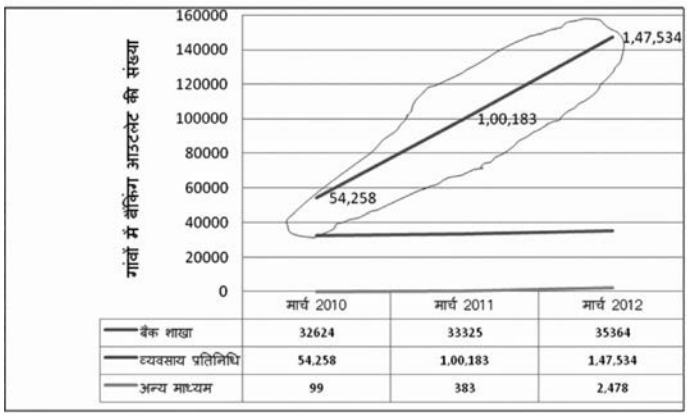

स्रोत – भारतीय रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट, 2011–12

व्यवसाय प्रतिनिधि द्वारा खोले गए ICT आधारित खाते

व्यवसाय प्रतिनिधि द्वारा खोले गए ICT आधारित खातों की संख्या में पिछले तीन वर्षों में आशातीत वृद्धि देखी गई है। इन खातों की संख्या वर्ष 2010 में 1.26 करोड़ से बढ़कर मार्च 2012 में 5.21 करोड़ हो गई जिनमें प्रचालनों

[3] http://rbi.org.in/scripts/BS ViewBulletin.aspx?Id=13986

की संख्या भी 1.87 करोड़ से बढ़कर 11.93 करोड़ हो गई है (सारणी 2)।

सारणी 2 – व्यवसाय प्रतिनिधि द्वारा खोले गए ICT आधारित बैंक खाते

ICT आधारित बैंक खाते	मार्च 2010	मार्च 2011	मार्च 2012
खातों की संख्या करोड़ में	1.26	2.96	5.21
खातों में प्रचालनों की संख्या करोड़ में	1.87	6.46	11.93

स्रोत – भारतीय रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट, 2011–12

रिज़र्व बैंक का आउटरीच कार्यक्रम

व्यवसाय प्रतिनिधि मॉडल को बढ़ावा देने, वित्तीय समावेशन एवं वित्तीय साक्षरता के प्रसार हेतु भारतीय रिज़र्व बैंक के उच्चाधिकारी पिछले तीन वर्षों से आउटरीच कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीण इलाकों में जा रहे हैं। इस कार्यक्रम का ग्रामीण वित्तीय समावेशन पर काफी सकारात्मक असर पड़ा है। आउटरीच कार्यक्रम में कवर किए गए गांवों में व्यवसाय प्रतिनिधि द्वारा खोले गए नो–फ्रिल खातों की संख्या 2010 में 7,361 से लगभग पांच गुना बढ़कर मार्च 2012 में 35,460 हो गई (चार्ट 2)। यह कहा जा सकता है कि व्यवसाय प्रतिनिधि मॉडल को रिज़र्व बैंक आउटरीच कार्यक्रम द्वारा प्रोत्साहन मिलता है और इसका वित्तीय समावेशन पर असर साफ देखा जा सकता है।

चार्ट 2 – रिज़र्व बैंक आउटरीच कार्यक्रम का वित्तीय समावेशन पर असर

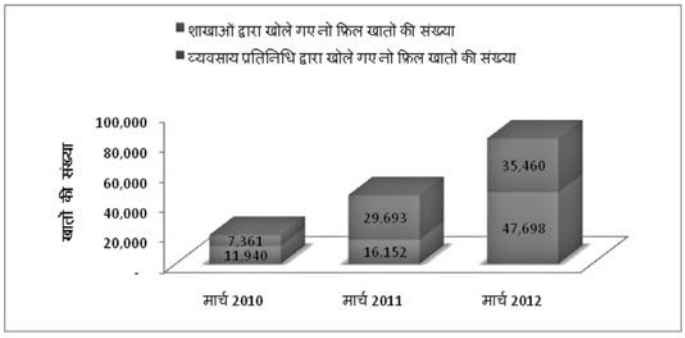

स्रोत – भारतीय रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट, 2011–12

व्यवसाय प्रतिनिधि के लिए अनिवार्यताएं

व्यवसाय प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किए गए व्यक्ति या संस्था के लिए कुछ विशेषताएं अनिवार्य समझी गई हैं जो कि इस प्रकार हैं–

- ग्रामीण जनता और वित्तीय सुविधाविहीन लोगों की आर्थिक आवश्यकताओं और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की जानकारी रखना।
- बैंकिंग और ग्राहक के बीच वित्तीय संवाद स्थापित करने के लिए स्थानीय परम्पराओं, रीति–रिवाजों के प्रति संवेदनशील होना।
- ग्रामीण जनता में वित्तीय साक्षरता सम्बन्धी जानकारी देने के लिए बैंकिंग खाते, बीमा इत्यादि के बारे में आधारभूत जानकारी होना।
- ई–कियोस्क अथवा बॉयोमेट्रिक डिवाइस, पॉइंट ऑफ सेल के लिए जरूरी हैंड हेल्ड डिवाइस इत्यादि के उपयोग, सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधानों इत्यादि का पूरा ज्ञान होना; एवं
- ग्रामीणों की कृषि, ग्रामीण उद्यमों इत्यादि सम्बन्धी वित्तीय जरूरतों एवं समस्याओं से अच्छी तरह परिचित होना।

बैंकों द्वारा व्यवसाय प्रतिनिधि मॉडल में बरती जाने वाली सावधानियां

व्यवसाय प्रतिनिधि ग्रामीण जनता के लिए बैंक का प्रतिनिधि होता है, इसलिए यह जरूरी है कि बैंक द्वारा अपने व्यवसाय प्रतिनिधियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण एवं उनके कार्यों के सम्बन्ध में कुछ सावधानियां बरती जाएँ, जो कि इस प्रकार हैं –

- व्यवसाय प्रतिनिधि को बैंक के ग्राहक सेवा मानदंडों, वसूली नियमों, बैंकिंग लोकपाल योजना, शिकायत निवारण मशीनरी इत्यादि की पूरी जानकारी दी जानी चाहिए।
- मौजूदा नियमों के अनुसार व्यवसाय प्रतिनिधि एक से अधिक बैंकों के लिए कार्य कर सकता है किन्तु ग्राहक संपर्क के स्तर पर व्यवसाय प्रतिनिधि को उसी बैंक का

प्रतिनिधित्व करना होगा जिसकी सेवाएं ग्राहक प्राप्त करना चाहता है। दूसरे शब्दों में, व्यवसाय प्रतिनिधि को ग्राहक के सामने अन्य बैंकों के उत्पादों या सेवाओं का प्रचार–प्रसार करने से बचना चाहिए।

- बैंकों को स्वयं द्वारा नियुक्त व्यवसाय प्रतिनिधि द्वारा प्रदान की जा रही सेवाओं के लिए पूरी तरह जिम्मेदारी लेनी चाहिए।
- प्रत्येक व्यवसाय प्रतिनिधि को किसी बैंक शाखा या अति–लघु शाखा (Ultra Small Branch-USB) से संबद्ध किया जाना चाहिए जो कि समय–समय पर उनके कार्यों का निरीक्षण करे।
- व्यवसाय प्रतिनिधि और उससे संबद्ध शाखा के बीच की दूरी सामान्यतया ग्रामीण इलाकों में 30 किमी से कम और शहरी इलाकों में 5 किमी से कम होनी चाहिए। इस मानदंड में बदलाव जिला परामर्शकारी समिति (District Consultative Committee) अथवा राज्य स्तरीय बैंकर समिति (State level Bankers Committee) कर सकेगी।
- बैंकों को अपने व्यवसाय प्रतिनिधि को उचित मानदेय या फीस देनी चाहिए जिसकी समय–समय पर समीक्षा होनी चाहिए। व्यवसाय प्रतिनिधि का पारिश्रमिक उस स्तर का हो, जिससे वे अपनी आजीविका योग्य रूप से चला सकें।
- उचित प्रशिक्षण के अभाव में व्यवसाय प्रतिनिधि मॉडल बैंक की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचा सकता है इसलिए यह बहुत जरूरी है कि बैंक जिला एवं ब्लॉक स्तर पर व्यवसाय प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था करें। बगैर पर्याप्त प्रशिक्षण के व्यवसाय प्रतिनिधियों को फील्ड में नियुक्त नहीं करना चाहिए।
- व्यवसाय प्रतिनिधि के साथ किए गए समझौते में ग्राहकों से बैंक की बनिस्पत किसी भी प्रकार के कमीशन या फीस को वसूलने पर स्पष्ट मनाही होनी चाहिए। यद्यपि बैंक (न कि व्यवसाय प्रतिनिधि) पारदर्शी तरीके से तर्कसंगत सेवा प्रभार ग्राहक से वसूल सकते हैं।
- प्रत्येक दिन के अंत में या अगले दिन तक व्यवसाय प्रतिनिधि द्वारा किए गए सभी प्रचालनों की अकाउंटिंग बैंक खाते में हो जानी चाहिए।
- व्यवसाय प्रतिनिधि की नियुक्ति से पूर्व बैंक को उसकी पृष्ठभूमि के बारे में पूरी जांच–पड़ताल कर लेनी चाहिए क्योंकि व्यवसाय प्रतिनिधि द्वारा किए गए कार्यों के लिए बैंक जिम्मेदार होगा।
- बैंक प्रतिनिधि की रेटिंग, उनके कार्यों में जोखिम प्रबंधन, उनके द्वारा रखे जाने वाले धन की सीमा पर नियंत्रण, उनके कार्यों से संबंधित शिकायतों के निवारण की प्रक्रिया इत्यादि के बारे में स्पष्ट दिशानिर्देश दिए जाने चाहिए।

सारांश

सार रूप में हम कह सकते हैं कि व्यवसाय प्रतिनिधि देश में वित्तीय समावेशन की पहुंच स्थापित करने में अहम साबित हो रहे हैं। पिछले कुछ सालों में व्यवसाय प्रतिनिधि मॉडल का प्रसार बहुत तेजी से हुआ है। इस दिशा में प्रारंभ में रिज़र्व बैंक द्वारा केवल नॉन–प्रॉफिट कंपनियों को इजाजत दी गई थी किन्तु शीघ्र ही व्यवसाय प्रतिनिधि सम्बन्धी प्रावधानों को उदार बना दिया गया है। अब इस दिशा में कई कंपनियां आगे आ रही हैं। यदि सरकार एवं रिज़र्व बैंक द्वारा व्यवसाय प्रतिनिधि मॉडल की वित्तीय परिचालन से जुड़ी बाधाओं को दूर करने के लिए बैंकों को सब्सिडी या वित्तीय सहयोग दिया जाए तो यह मॉडल देश के 6 लाख से अधिक गांवों में वित्तीय तंत्र की पहुंच स्थापित करने में सक्षम है। श्री समीर कोचर द्वारा लिखित पुस्तक "Speeding Financial Inclusion" के अनुसार देश में वित्तीय समावेशन से वंचित लोगों तक बैंकिंग सेवाओं को पहुँचाने का खर्चा लगभग 820 करोड़ रुपए है और यदि सरकार द्वारा यह राशि व्यवसाय प्रतिनिधि मॉडल को वित्तीय दृष्टि से बैंकों के लिए लाभदायक बनाने में लगाई जाए तो इस मॉडल को बैंकिंग तंत्र का पूरा सहयोग मिल सकेगा जिससे निस्संदेह देश में शत प्रतिशत वित्तीय समावेशन संभव हो सकेगा।

❍❍❍

कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना–चुनौतियां एवं समाधान

राजेन्द्र सिंह
सेवानिवृत्त मुख्य प्रबंधक
इंडियन ओवरसीज़ बैंक

भारतीय बैंकिंग क्षेत्र के लिए कर्ज की पुनःसंरचना कोई नई बात नहीं है। इसका सबसे पहला प्रयोग कृषि ऋणों के लिए किया गया था। इसके दो प्रमुख उद्देश्य हैं – पहला, ऐसे ऋणकर्ता की सहायता करना जो संकट में है और दूसरा, जो इकाइयां बंद पड़ी हैं उन्हें बैंक/बैंक के समूहों द्वारा दिए गए ऋणों की वसूली सुनिश्चित करना। यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि जो इकाई रुग्ण हो चुकी है उसकी पुनःसंरचना का कोई अर्थ नहीं है।

कर्ज की पुनःसंरचना में उन्हीं इकाइयों को शामिल किया जाता है जो बाहरी कारणों जैसे आर्थिक मंदी, मानसून संबंधी समस्याओं – सूखा, बाढ़, घरेलू मुद्रा के बाह्य मूल्य में गिरावट आदि – के दुष्प्रभावों से ग्रस्त हैं। इन बाह्य कारणों के अतिरिक्त आंतरिक कारण जैसे कॉरपोरेट इकाई के परिचालन में कुप्रबंधन की दशा में भी पुनःसंरचना की जा सकती है। जहाँ इकाइयां आपराधिक कारणों या धोखाधड़ी में लिप्त रही हैं ऐसी इकाइयों को कर्ज की पुनः संरचना के अंतर्गत पात्र नहीं माना जाता।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने इस योजना को पहली बार अगस्त 2001 में लागू किया। कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना एक विशिष्टीकृत संस्थागत प्रबंधन है जिसमें समस्याग्रस्त कॉरपोरेट ऋणों को पुनःसंरचना के अंतर्गत लाया जाता है। इस योजना में उन्हीं ऋणों को शामिल किया जाता है जो बड़ी राशि के हैं और जिन्हें अनेक बैंकों द्वारा वित्तपोषित किया गया है।

जब एक अकेला बैंक किसी कॉरपोरेट इकाई को ऋण प्रदान करता है तब कोई भी समस्या पैदा होने पर ऋणकर्ता से पुनः समझौता कर सकता है। परंतु जहाँ अनेक बैंक शामिल हैं, वहाँ किसी समझौते पर पहुंचना आसान नहीं होता। विधिक रूप से ऋणदाताओं की देयता ही कर्ज की पुनःसंरचना की जड़ में है।

कर्ज की पुनःसंरचना प्रणाली की विशेषताएं

यह एक स्वैच्छिक गैर–वैधानिक प्रणाली है जिसके अंतर्गत देनदार–लेनदार अनुबंध, अंतर–लेनदार अनुबंध एवं 75 प्रतिशत लेनदार (मूल्यांकन के आधार पर), जो शेष लेनदारों को बहुमत के निर्णय को मानने के लिए बाध्य कर सकते हैं, शामिल है।

इस प्रणाली में शामिल हैं – केवल बहुविध बैंकिंग खाते, समूहन/सहायता संघीय खाते जहाँ सभी बैंक और वित्तीय संस्थाओं की बकाया राशि मिलाकर ₹ 10 करोड़ और उससे अधिक है। इसमें सभी श्रेणी की आस्तियों को शामिल किया जाता है जो लेनदार बैंकों की बहियों में दर्ज है और इनका वर्गीकरण भारतीय रिज़र्व बैंक के विवेकपूर्ण मानदंडों के आधार पर किया गया है।

ऐसे खाते भी पुनःसंरचना में शामिल किये जा सकते हैं, जो किसी ऋण वसूली न्यायाधिकरण/औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के अधीन चल रहे हैं या किसी भी न्यायालय के समक्ष विचाराधीन हैं। मानक एवं अवमानक आस्तियों को श्रेणी–I में रखा गया है जबकि संदेहास्पद आस्तियों को श्रेणी–II में।

यहां ऋणकर्ताओं को एक ऋणकर्ता–ऋणदाता अनुबंध का निष्पादन करना होता है। यह निष्पादन या तो कर्ज की पुनः संरचना कक्ष को खाते सौंपते समय या मूल ऋण दस्तावेजों के निष्पादन के समय किया जा सकता है। ऋणकर्ता–ऋणदाता अनुबंध विधिक रूप से एक यथावत अनुबंध है जिसमें दोनों पक्ष इसके लिए बाध्य हैं कि वे 90–180 दिनों तक कोई भी विधिक कार्रवाई नहीं करेंगे।

यथावत अनुबंध कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना के लिए आवश्यक है जिससे आवश्यक कर्ज की पुनःसंरचना की प्रक्रिया बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के पूरी की जा सके। फिर भी यथावत अनुबंध केवल दीवानी संबंधी मामलों में लागू किया जा सकता है चाहे वह ऋणकर्ता द्वारा या ऋणदाता द्वारा दूसरे पक्ष के विरुद्ध किया जाए। ध्यान रहे कि इसमें आपराधिक कार्रवाई शामिल नहीं है।

इस प्रक्रिया में ऋणकर्ता को एक और वचन देना होता है कि 'यथावत अवधि' के दौरान दस्तावेजों की अवधि परिसीमन के दृष्टिकोण से बढ़ जाएगी। साथ ही इस अवधि में ऋणकर्ता इकाई किसी अन्य प्राधिकरण से कोई सहायता नहीं लेगी और इसके निदेशक बोर्ड के कोई भी सदस्य त्यागपत्र नहीं देंगे।

कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना

इसके तीन स्तंभ होते हैं – 1. स्थायी मंच, 2. समर्थ समूह, 3. कक्ष। इनका वर्णन निम्नलिखित है :–

● कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना स्थायी मंच

यह एक स्वयं समर्थ सामान्य निकाय होता है। यह दिशा–निर्देशों को तय करता है। इस मंच में सभी वित्तीय संस्थाओं और बैंकों को प्रतिनिधित्व मिलता है। यह एक महत्वपूर्ण मंच होता है जहां ऋणकर्ता और ऋणदाता दोनों मिलकर दिशा–निर्देश तय करते हैं। इस मंच द्वारा कर्ज की पुनःसंरचना प्रक्रिया की निगरानी भी की जाती है।

इस मंच में एक स्थायी ग्रुप होता है जिसका कार्य बैठकों का आयोजन करना और नीतिगत निर्णय लेना होता है। इस स्थायी मंच को यह सुनिश्चित करना है कि इस प्रणाली में ऐसी कॉरपोरेट इकाइयां शामिल न हों जिनका व्यावसायिक लेन–देन कपटपूर्ण व्यवहारों पर आश्रित रहा हो या जिनका उद्देश्य दुर्भावपूर्ण रहा हो।

● कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना समर्थ समूह

इस समूह में सहभागी संस्थाओं के कार्यपालक निदेशक स्तर के प्रतिनिधि होते हैं। यह समूह कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना के अंतर्गत व्यक्तिगत आधार पर यह पता लगाने का प्रयत्न करता है कि पुनःसंरचना व्यवहार्य है या नहीं। इसी के आधार पर पात्र प्रस्तावों को कॉरपोरेट पुनःसंरचना कक्ष को भेज दिया जाता है। स्थायी मंच का कार्य दिशा–निर्देश जारी करना होता है तो समर्थ समूह इनका कार्यान्वयन सुनिश्चित करता है।

● कॉरपोरेट कर्ज पुनःसंरचना कक्ष

इसकी जिम्मेदारी स्थायी मंच और समर्थ समूह की सहायता करनी है जिससे प्रस्तावों की प्रारंभिक छान–बीन की जा सके। इस कक्ष द्वारा विस्तृत पुनर्वास योजना उन कॉरपोरेट इकाइयों के लिए तैयार की जाती है जिनका चुनाव समर्थ समूह द्वारा किया गया है।

कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना का कॉरपोरेट इकाइयों और बैंकरों द्वारा दुरुपयोग भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए जो प्रस्ताव इस प्रक्रिया के लिए पात्र नहीं हैं उन्हें भी समर्थ समूह को अग्रसारित कर दिया जाता है – जैसे ऋणों का दुरुपयोग, अक्षमता और कुप्रबंधन वाली इकाइयां जो किसी भी छूट और रियायत की पात्र नहीं हैं।

इसी तरह बैंकों/वित्तीय संस्थाओं द्वारा यह प्रयत्न किया जाता है कि ऐसे खातों को निरंतर मानक श्रेणी में ही बनाए रखा जाए क्योंकि अवमानक श्रेणी में होने से उन्हें इन खातों में प्रावधान करना पड़ता है।

● कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना की बढ़ती प्रवृत्ति

कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना कक्ष की सूचना के अनुसार इस प्रक्रिया पर भी मंदी, बढ़ती ब्याज दरों और बढ़ते उपादानों की मूल्य वृद्धि का प्रभाव पड़ा है। लगभग 69 कंपनियों ने ₹ 37,547 करोड़ से संबंधित प्रस्तावों को अप्रैल–सितंबर 2012 के बीच पुनःसंरचना कक्ष को भेजा; जबकि अप्रैल–सितंबर 2011 के बीच 35 प्रस्ताव कक्ष को भेजे गए।

इन सभी प्रस्तावों में स्टील और टेक्सटाइल इकाइयों की भरमार रही जिसके पीछे यूरोपीय देशों में मांग में आई कमी रही। अब इन कंपनियों द्वारा चुकौती अवधि में वृद्धि करने, ब्याज दरों में बदलाव करने और बैंकों/वित्तीय संस्थाओं को घाटे के लिए तैयार रहने की मांग की गई है।

केंद्र सरकार द्वारा सितंबर 2012 में राज्यों के ऊर्जा वितरण की रुग्ण इकाइयों के लिए ₹ 90,00,000 करोड़ के प्रस्तावों की संस्तुति की गई है।

भारत सरकार ने ₹ 35,000 करोड़ के कर्ज की पुनःसंरचना की घोषणा की है। क्रिसिल रेटिंग एजेंसी द्वारा 30 अगस्त 2012 को की गई एक घोषणा के अनुसार वर्ष 2011-12 और 2012-13 के बीच बैंकों द्वारा किए जाने वाले कर्ज की पुनःसंरचना की राशि ₹ 3,25,000 करोड़ तक पहुंच सकती है। यह अप्रैल 2012 में किए गए अनुमान ₹ 2,00,000 करोड़ से अधिक है।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने कार्यपालक निदेशक श्री बी. महापात्रा की अध्यक्षता में गठित एक कार्यबल द्वारा बैंकों को पुनःसंरचनाकृत ऋणों की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण अधिक से अधिक प्रावधान करने की सलाह दी है। कार्य बल ने प्रवर्तकों के लिए भी यह संस्तुति की है कि वे अधिक से अधिक पूंजी का योगदान सुनिश्चित करें।

वर्ष 2011-12 में बैंकों/वित्तीय संस्थाओं ने ₹ 80,000 करोड़ की काफी बड़ी राशि के प्रस्तावों को ऋण पुनःसंरचना कक्ष को अग्रसारित किया जबकि वर्ष 2010-11 में यह राशि ₹ 25,000 करोड़ थी।

कर्ज पुनःसंरचना कक्ष को भेजे गए ऋण की राशियां

वर्ष 2012–13 की पहली छमाही का विवरण

प्रथम तिमाही (अप्रैल–जून 2012)	₹ 18,003 करोड़	23 प्रस्ताव
द्वितीय तिमाही (जुलाई–सितम्बर 2012)	₹ 19,544 करोड़	38 प्रस्ताव
कुल छमाही	₹ 37,547 करोड़	61 प्रस्ताव

सकल ऋण और पुनःसंरचनाकृत मानक आस्तियां

	मार्च 2009	मार्च 2010	मार्च 2011	मार्च 2012
सकल ऋण (₹ करोड़)	27,93,572	32,71,896	40,12,079	46,55,271
निष्पादक आस्तियों का सकल ऋणों में प्रतिशत	2.44	2.50	2.35	2.94
पुनःसंरचनाकृत मानक आस्तियों का सकल ऋणों में प्रतिशत	2.16	2.99	2.66	4.68

स्रोत – कर्ज पुनःसंरचना कक्ष

कॉरपोरेट कर्ज पुनःसंरचना योजना का कॉरपोरेट इकाइयों एवं बैंकरों द्वारा दुरुपयोग किए जाने की संभावनाएं भी रहती हैं, जहां इस योजना के अंतर्गत ऐसे प्रस्ताव भी समर्थ समूह को भेज दिए जाते हैं जिनमें चूक का कारण कॉरपोरेट स्वयं है। उदाहरण के लिए ऋणों को दूसरे कार्यों में लगा दिया जाना, अक्षमता और व्यावसायिक कुप्रबंधन आदि। ऐसी इकाइयां किसी छूट और रियायत की पात्र नहीं होतीं। बैंकों/सावधि ऋण देने वाली वित्तीय संस्थाओं का यह भी प्रयत्न रहता है कि ऋण खाते निरंतर मानक श्रेणी में ही बने रहें क्योंकि अवमानक होने पर उन्हें इन पर प्रावधान करना पड़ता है।

कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना के बारे में भारतीय रिज़र्व बैंक के उप गवर्नर डॉ. के.सी. चक्रवर्ती का कहना है कि यदि मंदी का प्रभाव पुनःसंरचनाकृत कर्जों के खातों में वृद्धि से देखा जा रहा है तो यह स्वाभाविक है कि इसका प्रभाव निजी क्षेत्र के बैंकों और विदेशी बैंकों पर भी पड़ना चाहिए परंतु यह केवल सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों पर ही दिखाई पड़ रहा है। इस बात से यह संकेत मिलता है कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक कर्जों की पुनःसंरचना के संबंध में विवेकपूर्ण नहीं रहे।

एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले दो वर्ष में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का कार्य–निष्पादन संतोषजनक नहीं रहा है। इसके पीछे कारण है पिछले दो वर्षों में ऋणों में भारी फिसलन अर्थात मानक आस्तियों का अवमानक आस्तियों में परिवर्तन, पुनःसंरचना की बढ़ती राशि, परिचालन निष्पादन जैसे निवल ब्याज मार्जिन आदि में गिरावट होना।

व्यावहारिक रूप में पुनःसंरचना से बैंक की बहियों में अनर्जक आस्तियों में कमी तो दर्ज हो जाती है परंतु गहराई से देखने पर यही पता चलता है कि यह मात्र तकनीकी उपाय ही है। यह स्वाभाविक है कि अनर्जक आस्तियों में कमी ऋणों की वसूली से ही होनी चाहिए। यही एक दीर्घकालिक उपाय है।

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक मंदी की स्थिति के चलते अनर्जक आस्तियों में कमी मुख्यतया समझौता निपटान प्रक्रिया के आधार पर कर रहे हैं जबकि वसूली का अंश इसमें कम है।

कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना का भविष्य

कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना प्रक्रिया बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं के लिए अपरिहार्य है। फिर भी व्यापक अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह अंतिम विकल्प होना

चाहिए। साथ ही इस योजना में शामिल किए जाने वाले ऋणों की पात्रता निश्चित करते समय सावधानी और सतर्कता बरतने की आवश्यकता है, जिससे इसका दुरुपयोग न हो।

इस बारे में एक सुझाव यह भी दिया गया है कि कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना के सभी बड़े प्रस्तावों को बैंक के मुख्य अर्थशास्त्रियों के समक्ष भी रखा जाना चाहिए और उनकी अनुशंसा ली जानी चाहिए। विदेशी बैंकों में मुख्य अर्थशास्त्री भी पुनःसंरचना के लिए बनाई गई उच्च कमेटी का सदस्य होता है। यह प्रणाली सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में भी लागू की जानी चाहिए।

भारतीय रिज़र्व बैंक की भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति रिपोर्ट 2012 में कहा गया है कि घरेलू अर्थव्यवस्था में मंदी अनर्जक आस्तियों में वृद्धि होने का मुख्य कारण है। साथ ही बढ़ती ब्याज दरें भी इसके लिए जिम्मेदार हैं। अनुभव यह भी बताते हैं कि जब ऋणों को अति उत्साह में दिया जाता है तब भी अनर्जक आस्तियों के बढ़ने का खतरा पैदा हो जाता है।

पुनःसंरचनाकृत कर्जों की आस्तियों के मूल्यों को सुरक्षित रखना

भारतीय रिज़र्व बैंक ऐसे कर्जों के खातों में आस्तियों के मूल्य में कमी को ध्यान में रखते हुए प्रावधान करने के लिए दिशा–निर्देश जारी करता है। परंतु वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस पर पुनः अवलोकन की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है।

पुनःसंरचनाकृत कर्जों में मूलधन की अदायगी का पुनर्निर्धारण किया जाता है। जहाँ तक ब्याज दरों का प्रश्न है उनमें कमी की जाती है। अगस्त 2003 में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा मूलधन के पुनर्निर्धारण के लिए दिशा–निर्देश जारी नहीं किए गए फिर भी इसका उल्लेख किया गया कि यदि ब्याज दरों में कमी की जाती है, जिससे ब्याज की राशि छोड़ देनी पड़ती है, तो ऐसी राशि को या तो बट्टे खाते में डाल दिया जाए या इसका प्रावधान किया जाए। यह प्राथमिक तौर पर सावधि ऋणों के लिए किया जाता है।

इसके पीछे तर्क यही है कि सावधि ऋणों का स्रोत ऐसी जमाराशियाँ होती हैं जिन पर बैंकों को अधिक ब्याज देना पड़ता है। जब ऐसे कर्ज की पुनःसंरचना की जाती है तब बैंकों को ब्याज कम मिलता है, ब्याज के इस अंतर को बकाया ऋण की अवधि में समायोजित किया जाता है।

उपर्युक्त तर्क भारतीय बैंकों के लिए सही नहीं लगता क्योंकि भारतीय बैंक सावधि जमा की विभिन्न परिपक्वता अवधि पर अलग–अलग ब्याज का भुगतान करते हैं। अन्य शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक सावधि ऋण के लिए स्रोत की पहचान नहीं की जा सकती। इस प्रक्रिया से बैंकिंग तंत्र पर कोई कुप्रभाव दिखाई नहीं पड़ा जिसका कारण यह था कि कुछ अति उत्साही बैंकरों ने पुनःसंरचना के अंतर्गत अदायगी अवधि बढ़ाकर प्रावधानों की आवश्यकताओं को नजरंदाज कर दिया और यही कारण है कि ब्याज दर वर्तमान मूल्यों की शर्तों पर नहीं के बराबर है।

उचित मूल्य संकल्पना की व्यावहारिकता

भारतीय रिज़र्व बैंक ने उचित मूल्य संकल्पना की शुरुआत वर्ष 2009 से किया और इस नियम के कार्यक्षेत्र को और बढ़ा दिया। भारतीय रिज़र्व बैंक के अनुसार, ''ब्याज दरों में कमी और मूलधन की अदायगी का पुनर्निर्धारण पुनःसंरचना प्रक्रिया के अंतर्गत है जिनसे आस्तियों के उचित मूल्य में कमी होने की संभावना है।''

आस्तियों के उचित मूल्य में कमी होना एक आर्थिक नुकसान है और इसका इक्विटी के बाजार मूल्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः भारतीय रिज़र्व बैंक बैंकों से यह अपेक्षा करता है कि वर्तमान मूलधन और ब्याज की अदायगी मूल्यांकन ऋण की मूल शर्तों के आधार पर की जाए और साथ ही संशोधित शर्तों के आधार पर भी की जाए जो एक विशिष्ट बट्टा दर पर आधारित हो। फिर दोनों में अंतर के आधार पर प्रावधान सुनिश्चित किया जाए। यह अभ्यास ऋण खातों की अवधि के प्रत्येक वर्ष किया जाना चाहिए। जिन ऋणों का आकार ₹ 1 करोड़ से कम है उनमें भारतीय रिज़र्व बैंक ने सरलीकरण प्रक्रिया के अंतर्गत सीधे 5 प्रतिशत प्रावधान करने का निर्देश दिया है।

भारतीय रिज़र्व बैंक के ''उचित मूल्य संकल्पना'' के तर्क पर प्रश्नचिह्न भी उठ खड़े हुए हैं। बैंकों के तरलता वाले बॉण्ड/डिबेंचर में निवेश ''मार्क–टु–मार्केट'' आधार पर होना चाहिए जिसका अर्थ है कि जिस मूल्य पर निवेश खरीदा गया है उसी दर पर उसकी बिक्री भी होगी अर्थात उचित मूल्य पर। यहां यह भी ध्यान देने की बात है कि बैंकों का ऋण नकदी रहित रूप में होता है और उसके लिए कोई बाजार नहीं होता। यहां यह भी प्रश्न उठता है कि उचित मूल्य संकल्पना में एक ऋण जब दूसरी संस्था को बेच दिया जाता है तब क्या प्राथमिक आधार पर इसके ब्याज के भुगतान की जिम्मेदारी ऋणकर्ताओं की होती है? इसका उत्तर है – नहीं। इसके पीछे कारण है कि पहला, एक संभावित

ग्राहक सदैव यह चाहता है कि कितनी ऋण राशि ऐसी है जिसकी वसूली आसानी से हो सकती है और साथ ही इससे संबंधित प्रतिभूतियों की नवीनतम स्थिति क्या है? दूसरा, कॉरपोरेट इकाइयों और बैंकों के तुलन पत्रों में अस्तियों का मूल्यांकन अभिलिखित वास्तविकताओं के त्रिपक्षीय आधार पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त का मूल्यांकन मूल्यांकनकर्ताओं के व्यक्तिगत निर्णय पर आधारित होता है। बहुत कम मामलों में आस्तियों का मूल्यांकन बाजार की स्थितियों पर आधारित होता है।

शेयर और बॉण्ड 'मार्क–टु–मार्केट' प्रतिभूतियों की श्रेणी में आते हैं। फिर भी भारतीय रिज़र्व बैंक ने सरकारी बॉण्ड में निवेश के लिए बैंकों को सावधानी बरतने का निर्देश दिया है।

जहां तक सांविधिक चलनिधि की आवश्यकता है, बैंकों को अपनी जमा देयताओं के समक्ष 25 प्रतिशत इसमें रखना होता है। भारतीय रिज़र्व बैंक के अनुसार इसे परिपक्वता तक धारित रखना है और इसका मूल्यांकन मूल लागत पर आधारित होता है न कि बाजार मूल्य पर। अतः जब 25 प्रतिशत जमा तरलता वाली और विपणन योग्य है, उनका मूल्यांकन बाजार आधार पर नहीं होता तब एक छोटी ऋण राशि, जो नकदी रहित भी है, को उचित मूल्य संकल्पना के अंतर्गत लेना व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता। साथ ही बैंकों की ऋण आस्तियों की 'उचित मूल्य संकल्पना' का पता लगाने हेतु सभी प्रासंगिक आंकड़े उपलब्ध नहीं होते।

जहाँ तक शेयर मूल्यों का प्रश्न है, यह बहुविध घटकों पर निर्भर करता है जैसे आस्तियों का बही मूल्य, प्रति शेयर कमाई, कंपनी की बाजार में प्रतिष्ठा, बाजार भावना और कुल मिलाकर भीड़ मनोवृत्ति आदि।

आज कॉरपोरेट इकाइयों को बैंकों से ऋण प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है क्योंकि बैंकों द्वारा इन इकाइयों के वित्तपोषण में रुचि नहीं ली जा रही है। इन सबके पीछे सबसे बड़ा कारण है कि बैंकों द्वारा ऊर्जा, सड़क और रत्न आभूषण क्षेत्रों में दिए गए ऋणों पर दबाव काफी बढ़ गया है। कॉरपोरेट इकाइयों को दिए गए ऋणों पर अधिक प्रावधान करने से पिछले वित्तीय वर्ष की चौथी तिमाही में अनेक बैंकों की लाभप्रदता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और यह एक मुख्य कारण है कि बैंक ऐसे ऋणों में पूर्ण सावधानी एवं सतर्कता बरत रहे हैं। अब बैंक कॉरपोरेट इकाइयों को ऋण देने के पहले वर्तमान आर्थिक वातावरण में उनके ऋण जोखिम का अध्ययन करना चाहते हैं। डेक्कन क्रानिकल होल्डिंग्स और किंग फिशर दो ऐसी कॉरपोरेट इकाइयां हैं जो काफी चर्चा में हैं।

बैंकों के सकल ऋणों में कॉरपोरेट इकाइयों को दिए गए ऋण 30 से 55 प्रतिशत के बीच में है। यही कारण है कि बैंक इस जोखिम को कम करने के लिए अन्य क्षेत्रों में ऋण का निवेश बढ़ाने जा रहे हैं। इन क्षेत्रों में कृषि, लघु मध्यम उद्यम और रिटेल क्षेत्र शामिल है।

कर्जों की पुनःसंरचना के बारे में भारतीय रिज़र्व बैंक के नए दिशा–निर्देश

भारतीय रिज़र्व बैंक ने एक नया दिशा–निर्देश जारी किया है जिसके अंतर्गत अप्रैल 2014 से बैंको को संकटग्रस्त किसी कंपनी के ऋण अदायगी संबंधी मानदंडों में छूट देने की कोई गुंजाइश नहीं होगी जब तक कि उस ऋण को अनर्जक श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया जाता।

अतः भारतीय रिज़र्व बैंक ने बैंकों को यह दिशा–निर्देश जारी किया है कि वे जून 2013 में पुनःसंरचनाकृत कर्जों में वर्तमान प्रावधान की दर 2.75 प्रतिशत से बढ़ाकर 5 प्रतिशत तक करें। भारतीय रिज़र्व बैंक के अब तक के दिशा–निर्देशों के आधार पर कर्जों को पुनःसंरचनाकृत किए जाने की दृष्टि से पात्र कर्जों का वर्गीकरण अनर्जक आस्तियों में करना आवश्यक नहीं था और उन्हें संकट से उबरने के लिए अतिरिक्त समय दिया जाता था। अब नए मानदंडों के अनुसार इन्हें अनर्जक आस्तियों में वर्गीकृत करना आवश्यक होगा अर्थात इन आस्तियों के लिए अलग प्रावधान करना पड़ेगा जिससे लाभप्रदता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने इसके लिए कुछ अपवाद भी बताए हैं जैसे मूलभूत सुविधाओं एवं व्यावसायिक जमीन–जायदाद संबंधी परियोजनाएं। इन नए मानदंडों को भारतीय रिज़र्व बैंक के कार्यपालक निदेशक श्री बी. महापात्रा की अध्यक्षता में गठित एक कार्य बल की संस्तुतियों के आधार पर बनाया गया है।

इस कार्य बल ने यह भी संस्तुति दी थी कि भारतीय रिज़र्व बैंक को पुनःसंरचना के लिए कर्जों के आस्ति वर्गीकरण की विनियामक व्यवस्था में दखल नहीं देना चाहिए। फिर भी भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा वर्तमान समय में घरेलू समष्टि आर्थिक वातावरण और वैश्विक परिस्थितियों को देखते हुए इस विकल्प पर दो वर्ष के बाद विचार किया जा सकता है। अतः पुनःसंरचनाकृत कर्जों

में वर्तमान आस्ति वर्गीकरण के दिशा–निर्देशों को देखते हुए इसे अप्रैल 2015 से बंद किया जाएगा। अन्य शब्दों में पुनःसंरचनाकृत कर्जों को तुरंत अवमानक आस्तियों में वर्गीकृत कर दिया जाएगा।

अतः ऐसी संभावना से निपटने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक ने नई पुनःसंरचनाकृत मानक आस्तियों में प्रावधान वर्तमान 2.75 प्रतिशत से बढ़ाकर 4 प्रतिशत कर दिया है। यह दिशा–निर्देश 1 जून 2013 से लागू होगा। जहाँ तक वर्तमान पुनःसंरचनाकृत कर्जों का प्रश्न है, वहां प्रावधान चरणबद्ध रूप से 2.75 प्रतिशत से बढ़ाकर जनू 2015 तक 5 प्रतिशत कर दिया जाएगा। अतः पुनःसंरचनाकृत कर्जों संबंधी दिशा–निर्देशों के सख्त किए जाने से अनर्जक आस्तियों में वृद्धि होने की संभावनाएं बढ़ गई हैं।

कॉरपोरेट कर्ज की पुनःसंरचना के पुनरीक्षण के लिए स्वतंत्र संस्था

इस प्रक्रिया के अंतर्गत केवल पात्र खातों को शामिल किया जाना सुनिश्चित करने के लिए वित्त मंत्रालय, भारत सरकार ने एक नई प्रणाली शुरू करने की योजना बनाई है। इस योजना के अंतर्गत एक स्वतंत्र संस्था का गठन किया जाएगा जो स्वतंत्र रूप से एक परामर्शदात्री संस्था के रूप में कार्य करेगी। इस योजना के अंतर्गत एक निश्चित न्यूनतम सीमा से अधिक ऋण राशि के प्रस्तावों पर ही विचार किया जाएगा।

केंद्रीय वित्त सचिव के अनुसार इस न्यूनतम सीमा पर सभी बैंक परस्पर विचार–विमर्श करके निर्णय करेंगे। जब भी बैंकों को पुनःसंरचना संबंधी प्रस्ताव मिलेंगे, वे इसकी प्राथमिक जांच–पड़ताल कर पात्रता का पता लगाएंगे। इस निर्णय के बाद इन प्रस्तावों को इस स्वतंत्र परामर्शदात्री संस्था को अग्रसारित किया जाएगा। संस्था इसका अध्ययन कर अपनी राय से बैंकों को अवगत करा देगी।

केंद्रीय वित्त सचिव ने यह भी स्पष्ट किया है कि इस स्वतंत्र संस्था में वित्त मंत्रालय या बैंकों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं होगा। इसमें वे ही सदस्य होंगे जो विधिक, वित्तीय जांच–पड़ताल और वित्तीय क्षेत्र से संबंधित विशेषज्ञ होंगे। इस कदम से बैंकों को पुनःसंरचना के दबाव से राहत मिलेगी।

कुल मिलाकर इस संस्था के गठन से केवल पात्र ऋणकर्ताओं को ही पुनःसंरचना का लाभ मिल सकेगा।

❍❍❍

ऋण-जमा अनुपात एवं बैंक समूह के वर्गीकरण के आधार पर कुल जमाराशि एवं सकल बैंक ऋण में वृद्धि का वितरण - दिसंबर 2012

(प्रतिशत में)

ऋण-जमा अनुपात	भारतीय स्टेट बैंक और उसके सहयोगी		राष्ट्रीयकृत बैंक		विदेशी बैंक		क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक		निजी क्षेत्र के पुराने बैंक		निजी क्षेत्र के नए बैंक		जोड़	
प्रतिशत	जमा	ऋण	जमा	ऋण	जमा	ऋण	जमा	ऋण	जमा	ऋण	जमा	ऋण	जमा	ऋण
0-25	14.0	-1.0	12.4	-7.9	-1.4	-15.4	14.9	8.0	13.0	12.0	21.5	12.9	14.1	-3.3
25-50	13.7	9.0	12.1	8.2	13.6	-2.7	9.4	12.5	19.5	16.3	-4.8	-10.4	10.8	6.5
50-60	13.6	10.5	12.1	12.8	15.9	16.1	11.0	14.9	14.2	15.9	24.8	37.9	13.9	14.6
60-70	12.0	15.9	6.7	11.4	106.1	29.3	8.6	16.8	21.3	19.6	10.7	25.4	10.9	14.7
70-80	12.1	15.9	8.8	15.2	1.6	18.2	10.0	16.6	15.6	22.4	17.5	15.2	9.3	16.1
80-100	17.8	14.9	4.4	15.0	4.3	-11.1	9.8	16.8	13.5	17.8	3.3	8.2	8.3	11.5
100 और इससे अधिक	9.3	18.6	-2.5	13.0	0.7	16.4	9.1	19.1	5.9	13.7	-11.5	22.5	-0.8	16.0
कुल	**13.3**	**15.1**	**9.3**	**10.8**	**6.9**	**11.6**	**10.6**	**16.6**	**13.9**	**14.9**	**9.1**	**18.6**	**10.3**	**13.2**

टिप्पणी : जिन कार्यालयों ने चालू और पिछले वर्ष दोनों की दिसंबर तिमाहियों में आंकड़े भेजे उन पर विचार किया गया है। पिछले वर्ष में शून्य जमा या ऋण वाले कार्यालयों को वृद्धि दर का हिसाब लगाने में शामिल नहीं किया गया है।

स्रोत : अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की जमाराशियां एवं ऋण की तिमाही सांख्यिकी, भारतीय रिज़र्व बैंक

घूमता आईना

के.सी. मालपानी
प्रबंधक, भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

खाद्य सुरक्षा पर अध्यादेश को मंजूरी

देश की दो–तिहाई जनसंख्या को ₹ 1 से 3 प्रति किलोग्राम की अत्यंत रियायती दर पर हर महीने 5 किलोग्राम खाद्यान्न देने वाले खाद्य सुरक्षा विधेयक को लागू करने के लिहाज से लाए गए अध्यादेश को राष्ट्रपति की मंजूरी मिल गई है। खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम विश्व का सबसे बड़ा कार्यक्रम होगा जिसके तहत सरकार हर साल देश की 67 प्रतिशत आबादी को करीब 6.2 करोड़ टन चावल, गेहूं या मोटे अनाज की आपूर्ति के लिए करीब ₹ 1,25,000 करोड़ खर्च करेगी। यह अध्यादेश संसद के मानसून सत्र से कुछ ही सप्ताह पहले लाया गया है और राजनीतिक दलों की मांग है कि खाद्य सुरक्षा विधेयक को दोनों सदनों में चर्चा के जरिए पारित किया जाना चाहिए था।

2015 में आर्थिक संवृद्धि दर 6.7 प्रतिशत होने का अनुमान

विश्व बैंक ने भारत की आर्थिक संवृद्धि दर 6.7 प्रतिशत रहने का अनुमान जताया है। 'वैश्विक आर्थिक संभावना' नामक अपनी ताजा रिपोर्ट में विश्व बैंक ने कहा है कि दक्षिण एशिया की क्षेत्रीय संवृद्धि को मुख्य रूप से भारत से गति मिलने की संभावना है। रिपोर्ट में भारत की जीडीपी संवृद्धि दर वर्ष 2014 में 6.5 तथा 2015 में 6.7 प्रतिशत रहने का अनुमान जताया गया है। रिपोर्ट के अनुसार 2013–15 की अवधि में निर्यात और निजी निवेश मजबूत होने का अनुमान है। इससे आर्थिक वृद्धि को गति मिलेगी। हालांकि वर्ष 2012 में इन दोनों ही क्षेत्रों में नरमी थी। ये कितने मजबूत होते हैं यह नीतियों तथा राजकोषीय स्थिति में सुधार की गति पर निर्भर होगा। रिपोर्ट के अनुसार वैश्विक मांग में अनुमान से कहीं अधिक वृद्धि तथा जिंसों के दाम में उम्मीद से कहीं अधिक गिरावट जैसे कारणों से परिदृश्य में सुधार आने की संभावना है।

लघु इकाइयों को सरकारी खरीद में आरक्षण मिलेगा

लघु एवं मध्यम क्षेत्र की उन इकाइयों को जिनके 51 प्रतिशत शेयर अनुसूचित जाति–अनुसूचित जनजाति (एससी–एसटी) के लोगों के पास हैं, सरकारी खरीद में आरक्षण मिलेगा। खरीद नीति का लाभ अनुसूचित जाति–अनुसूचित जनजाति उद्यमियों के स्वामित्व वाले कुटीर एवं लघु उद्यमों (एमएसई) तक पहुंचाने के उद्देश्य से सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम (एमएसएमई) मंत्रालय ने इस बारे में स्पष्टीकरण जारी किया है।

इस नीति के प्रावधान के तहत एकल स्वामित्व के मामले में स्वामी अनुसूचित जाति–अनुसूचित जनजाति का होगा। भागीदारी के मामले में अनुसूचित जाति–अनुसूचित जनजाति भागीदारों के पास कम से कम 51 प्रतिशत शेयर होने चाहिए। जबकि, 'प्राइवेट लिमिटेड कंपनियों के मामले में कम से कम 51 प्रतिशत शेयर अनुसूचित जाति–अनुसूचित जनजाति प्रवर्तकों के पास होंगे। सार्वजनिक खरीद नीति के अंतर्गत केंद्रीय मंत्रालय, विभाग और सरकारी कंपनी को मूल्य के लिहाज से अपनी कुल सालाना खरीद का 20 प्रतिशत हिस्सा एमएसएमई से खरीदना अनिवार्य है। अब खरीद नीति में इस 20 प्रतिशत भाग में से 4 प्रतिशत हिस्सा अनुसूचित जाति–अनुसूचित जनजाति उद्यमियों के स्वामित्व वाले एमएसई के लिए आरक्षित किया गया है।

भारतीय कंपनियों ने बॉण्ड निर्गम से ₹ 3.5 लाख करोड़ जुटाए

वर्ष 2012–13 में भारतीय कंपनियों ने डेट सिक्युरिटी अर्थात बॉण्ड के निजी आबंटन के जरिए ₹ 3.5 लाख करोड़ की भारी भरकम राशि जुटाई है। बॉण्ड के निजी तौर पर आबंटन के जरिए पूंजी जुटाने के लिए कंपनियां संस्थागत निवेशकों को सीधे ही बॉण्ड जारी करती हैं। पूंजी बाजार से जुड़ी कंपनी प्राइम डेटाबेस के अनुसार, 2012–13 में बॉण्ड के आबंटन के जरिए कंपनियों ने ₹ 3,51,848 करोड़ की पूंजी जुटाई, जो पिछले वर्ष जुटाई गई ₹ 2,52,564 करोड़ की राशि से काफी ज्यादा है।

विशेषज्ञों का कहना है कि भारतीय कंपनियों ने बॉण्ड के जरिए पूंजी जुटाना इसलिए बेहतर समझा ताकि उन्हें बैंक कर्ज

पर दिए जाने वाले ब्याज और इस तरह के बॉण्ड पर दिए जाने वाले ब्याज के अंतर का फायदा मिल सके। कंपनियों के बॉण्ड के निजी तौर पर आबंटन में अधिक निवेश की एक और वजह यह भी रही है कि सरकार ने विदेशी संस्थागत निवेशकों के लिए बॉण्ड में निवेश सीमा बढ़ा दी और नियमों को भी सरल बना दिया। इसके अलावा कमजोर रुपये का भी उन्हें फायदा मिला।

कर्ज पुनःसंरचना दिशा–निर्देश : सरकारी बैंकों का घटेगा मुनाफा

बैंकों के कर्ज की पुनःसंरचना पर भारतीय रिज़र्व बैंक के दिशा–निर्देशों से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक मसलन भारतीय स्टेट बैंक, पंजाब नैशनल बैंक और सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के लाभ पर दबाव पड़ सकता है क्योंकि उच्च प्रावधानीकरण की जरूरतों को पूरा करने के लिए इन बैंकों को और रकम अलग रखनी पड़ेगी। मौजूदा पुनःसंरचित संपत्तियों पर प्रावधानीकरण अगले तीन सालों में चरणबद्ध तरीके से मौजूदा 2.75 फीसदी के मुकाबले बढ़ाकर 5 फीसदी किया जाना है। इसके अतिरिक्त नए पुनःसंरचित कर्ज के लिए भी प्रावधानीकरण की अपेक्षा बढ़कर 1 जून 2013 से 5 फीसदी हो जाएगी। 1 अप्रैल 2015 से पुनःसंरचित होने वाले सभी कर्जों को अनर्जक संपत्ति के तौर पर वर्गीकृत किया जाएगा।

देश के सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के बैंकों में भारतीय स्टेट बैंक के पास पुनःसंरचित कर्ज का सबसे बड़ा पोर्टफोलियो है। पिछले वित्त वर्ष के आखिर में इसका पुनःसंरचित कर्ज ₹ 43,111 करोड़ का था। 31 मार्च 2013 को सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया का पुनःसंरचित कर्ज पोर्टफोलियो ₹ 22,681 करोड़ का था। पंजाब नैशनल बैंक का पुनःसंरचित कर्ज ₹ 32,143 करोड़ का है। सार्वजनिक क्षेत्र के कई बैंक मसलन बैंक ऑफ बड़ौदा, केनरा बैंक, इंडियन ओवरसीज बैंक और यूनियन बैंक ऑफ इंडिया आदि के कर्ज पोर्टफोलियो में पुनःसंरचित कर्ज का अच्छा–खासा हिस्सा है। इसके मुकाबले निजी क्षेत्र के बैंकों में पुनःसंरचित कर्ज का हिस्सा काफी कम है। निजी क्षेत्र के सबसे बड़े बैंक आईसीआईसीआई बैंक का पुनःसंरचित कर्ज ₹ 5315 करोड़ का है, जो इसके कुल कर्ज का 1.8 फीसदी है। एचडीएफसी बैंक के कुल कर्ज का महज 0.2 फीसदी हिस्सा ही पुनःसंरचित कर्ज है, वहीं एक्सिस बैंक और येस बैंक के कुल कर्ज में पुनःसंरचित कर्ज का हिस्सा क्रमशः 2.2 व 0.3 फीसदी है।

टेलिकॉम सेक्टर में 100 प्रतिशत एफडीआई को मंजूरी

दूरसंचार आयोग ने टेलिकॉम सेक्टर में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) की मौजूदा सीमा को 74 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत करने को मंजूरी दे दी है। इसमें से 49 प्रतिशत निवेश स्वतःस्वीकृति यानि ऑटोमेटिक रूट से किया जा सकता है जबकि इससे अधिक के निवेश के लिए विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड (एफआईपीबी) की मंजूरी लेनी जरूरी होगी। इस फैसले पर कार्यान्वयन कैबिनेट मंजूरी के बाद ही होगा।

इस क्षेत्र में फिलहाल 74 प्रतिशत एफडीआई की मंजूरी है जिसमें से 49 प्रतिशत स्वतःस्वीकृति यानि ऑटोमेटिक रूट से किया जा सकता है जबकि बाकी के लिए एफआईपीबी की मंजूरी की जरूरत होती है। इस क्षेत्र में एफडीआई सीमा बढ़ाने के पीछे मकसद दूरसंचार उद्योग को नया निवेश हासिल करने में मदद करना है ताकि उसे वित्तीय बोझ घटाने में मदद मिले।

आईडीआर को इक्विटी में बदलने के लिए सेबी के निर्देश

बाजार नियामक सेबी ने भारतीय डिपॉजिटरी रिसीट (आईडीआर) को इक्विटी शेयरों में परिवर्तित करने के लिए विस्तृत रूपरेखा जारी की है। यह कदम और अधिक विदेशी कंपनियों को घरेलू शेयर बाजारों में सूचीबद्धता के लिए आकर्षित करने के उद्देश्य से उठाया गया है। आईडीआर आम तौर पर रुपये में अंकित वे प्रतिभूतियाँ होती हैं जिनके जरिये विदेशी कंपनियां भारतीय पूंजी बाजार से धन जुटाती हैं। सेबी ने कहा है कि आईडीआर की सूचीबद्धता की तारीख से एक साल तक उसे इक्विटी शेयर में नहीं बदला जा सकता। आईडीआर जारीकर्ता कंपनी को निवेशकों को इसके लिए दोतरफा विकल्प उपलब्ध कराने होंगे ताकि भारतीय निवेशक अपनी डिपॉजिटरी रिसीट को कंपनी के शेयरों में परिवर्तित कर सकें या फिर बेचकर राशि पा सकें। आईडीआर में परिवर्तन का विकल्प सतत रूप से उपलब्ध रहेगा और परिवर्तन के समय 20 प्रतिशत शेयर छोटे निवेशकों के लिए आरक्षित रहेंगे। सेबी ने अपने परिपत्र में यह भी कहा है जारीकर्ता कंपनिया आईडीआर–धारकों को उनके शेयरों में बदलने अथवा अन्य विकल्प के मामले में जो रास्ता अपनाएंगी उसमें शामिल हैं – (i) आईडीआर का शेयरों में परिवर्तन (ii) आईडीआर को शेयरों में परिवर्तित कर उन्हें विदेशों में, जहां ऐसी कंपनी सूचीबद्ध है, बेचकर प्राप्त राशि को आईडीआर–धारक को उपलब्ध कराना। आईडीआर के परिवर्तन के लिए प्रत्येक

तिमाही में यह सुविधा एक बार उपलब्ध कराई जाएगी और यह कम से कम एक सप्ताह तक खुली रहेगी। मौजूदा आईडीआर जारीकर्ता कंपनियाँ नए नियमों का अनुसरण करते हुए सूचीबद्धता का एक साल पूरा होने के तीन महीने के भीतर धारकों को विमोचन अथवा परिवर्तन का विकल्प उपलब्ध करा सकती हैं।

उद्योगों को दिए जाने वाले बैंक कर्ज की रफ्तार घटी

अप्रैल में भारतीय बैंकों द्वारा उद्योगों को दिए जाने वाले कर्ज की मात्रा में कमी आई है। भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी आंकड़ों से अर्थव्यवस्था में निवेश की सुस्त रफ्तार का पता चलता है, जो बीते एक दशक में सबसे कम रही है।

अप्रैल 2013 में उद्योग जगत को दिए गए बैंक कर्ज में 15.5 फीसदी की वृद्धि देखी गई जो पिछले साल की इसी अवधि में 19.9 फीसदी थी। खाद्य प्रसंस्करण, फर्नीचर, सीमेंट, रसायन, बुनियादी ढांचा, कागज, शीशा, सूती वस्त्र और चमड़ा सहित अधिकांश खंडों में भी दिए गए कर्ज की मात्रा में कमी दर्ज की गई। अप्रैल 2013 में कृषि को दिए गए कर्ज में 10.5 फीसदी बढ़ोतरी दर्ज हुई जो पिछले साल की इसी अवधि में 14.1 फीसदी थी। सेवा क्षेत्र को दिए गए कर्ज में 11.6 फीसदी वृद्धि हुई, जबकि अप्रैल 2012 में यह आंकड़ा 15 फीसदी था।

अब नाबार्ड की अधिकृत पूंजी होगी ₹ 20,000 करोड़ की

सरकार ने राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की अधिकृत पूंजी ₹ 5,000 करोड़ से बढ़ाकर ₹ 20,000 करोड़ करने के प्रस्ताव को मंजूरी दी है। नाबार्ड की अधिकृत पूंजी बढ़ाने का उद्देश्य इस वित्तीय संस्थान को अपने परिचालन का दायरा बढ़ाने में मदद करना है। साथ ही सरकार ने नाबार्ड में अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक के पदों को एक करने का प्रस्ताव भी मंजूर कर दिया है।

इन परिवर्तनों के बाद नाबार्ड नए ऋण उत्पाद पेश करने और नए ग्राहक बनाने में समर्थ हो सकेगा। नाबार्ड अधिनियम, 1981 में संशोधन के जरिये इन बदलावों को लागू किया जाएगा। अधिनियम में बदलाव हो जाने पर नाबार्ड अल्पकालिक ऋण का कारोबार भी कर सकेगा।

प्राथमिकता–प्राप्त क्षेत्र को उधार–सीमाओं में संशोधन

प्राथमिकता–प्राप्त क्षेत्र के अंतर्गत दिए जाने वाले उधारों की सीमाएं निम्नानुसार संशोधित की गई हैं, जो 1 अप्रैल 2013 से लागू हैं –

कृषि क्षेत्र में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कृषि दोनों के अंतर्गत किसानों को कृषि उपज (गोदाम रसीदों सहित) को गिरवी/दृष्टिबंधक रखकर दिए जाने वाले 12 माह तक की अवधि के ऋणों की सीमा ₹ **25 लाख से बढ़ाकर** ₹ **50 लाख** कर दी गई है जबकि उर्वरक, कीटनाशक दवाइयों, बीजों, पशु खाद्य, मुर्गी आहार, कृषि औजारों और अन्य निविष्टियों आदि के डीलरों/विक्रेताओं को दिए जाने वाले ऋणों की सीमा **प्रति उधारकर्ता** ₹ **1 करोड़ से बढ़ाकर** ₹ **5 करोड़** कर दी गई है।

सूक्ष्म और लघु उद्यमों के मामले में सेवाएं उपलब्ध कराने या प्रदान करने में संलग्न सूक्ष्म और लघु उद्यमों (एमएसई) को दिए जाने वाले बैंक ऋण की सीमाएं **प्रति उधारकर्ता/इकाई** ₹ **2 करोड़ से बढ़ाकर** ₹ **5 करोड़** कर दी गई हैं बशर्ते वे एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 के अंतर्गत दी गई परिभाषा के अनुसार उपस्कर हेतु निवेश मानदंड को पूरा करते हों।

पोर्टफोलियो मैनेजमेंट सर्विस (पीएमएस) क्या है?

पोर्टफोलियो मैनेजमेंट सर्विस (पीएमएस) निवेश के तरीकों में से एक है। इसका इस्तेमाल उच्च मालियत वाले निवेशक (एचएनआई) और कंपनियां, इक्विटी, फिक्स्ड इनकम, गोल्ड और स्ट्रक्चर्ड प्रॉडक्ट्स जैसे कई प्रॉडक्ट्स में निवेश के लिए करती हैं। इसकी तुलना म्यूच्युअल फंडों से की जा सकती है। पोर्टफोलियो मैनेजमेंट सर्विस प्रदान करने वाले अपने प्रत्येक ग्राहक के लिए शेयर, डेरिवेटिव और दूसरी तरह की वित्तीय प्रतिभूतियों का अलग–अलग पोर्टफोलियो बनाते हैं। पोर्टफोलियो मैनेजर बनने के लिए सेबी के पास पंजीयन कराने की जरूरत होती है। जहां म्यूच्युअल फंड में निवेशक को यूनिट मिलते हैं वहीं पीएमएस निवेशक के पोर्टफोलियो में अलग–अलग कंपनियों के शेयर होते हैं।

● *पीएमएस के प्रकार*

डिस्क्रिशनरी पीएमएस में शेयर का चुनाव करने से लेकर उसे खरीदने और बेचने का काम पोर्टफोलियो मैनेजर करता है। निवेशक की ओर से सारे ट्रेड वही करता है, लेकिन नॉन–डिस्क्रिशनरी पीएमएस में निवेशक पोर्टफोलियो मैनेजर की सलाह से ट्रेडिंग के फैसले कर सकता है लेकिन ट्रेड पोर्टफोलियो मैनेजर ही करता है। एडवाइजरी पीएमएस में मैनेजर निवेशक को सिर्फ सलाह देता है और ट्रेड खुद निवेशक करता है।

● *फीस*

पोर्टफोलियो मैनेजमेंट सेवाओं की फीस फिक्स्ड, प्रॉफिट शेयरिंग या हाईब्रिड हो सकती है। फिक्स्ड फीस स्ट्रक्चर में मैनेजर हर तिमाही के लिए तय फीस लेता है जो फंड के साइज पर निर्भर करती है। इसमें निवेशक को हर हाल में फीस देनी होती है, भले ही पोर्टफोलियो का रिटर्न कुछ भी रहा हो। प्रॉफिट शेयरिंग मॉडल में इन्वेस्टर फीस के रूप में लाभ से कुछ फीसदी रकम अदा करता है। यह आम तौर पर लगभग 20–25 फीसदी तक होती है। हाईब्रिड मॉडल में दोनों के फीचर्स होते हैं।

क्या है स्पीड क्लियरिंग ?

स्पीड क्लियरिंग बाहरी चेकों (ऐसी बैंक शाखा का चेक जो स्थानीय न हो) को स्थानीय समाशोधन के माध्यम से संगृहीत करने की ऐसी प्रणाली है जो कोर बैंकिंग समर्थित बाहरी (गैर स्थानीय) बैंक शाखाओं के चेकों के संग्रहण की सुविधा उपलब्ध कराती है, बशर्ते उस बैंक की स्थानीय शाखा नेटवर्क समर्थित हो। स्पीड क्लियरिंग का मुख्य उद्देश्य है – बाहरी चेकों की वसूली में लगने वाले समय को कम करना।

अभी तक बाहरी चेकों के संग्रहण के लिए चेक को प्रस्तुतीकरण केंद्र (वह शहर जहां चेक प्रस्तुत किया गया है) से अदाकर्ता केंद्र (वह शहर जहां चेक देय है) को भेजना पड़ता था जिसके कारण चेकों की वसूली में तीन सप्ताह तक का समय लग जाता था। परंतु अब बैंकों ने कोर बैंकिंग सल्यूशन (सीबीएस) लागू करके अपनी शाखाओं को एक ही नेटवर्क के अंदर शामिल कर लिया है और सीबीएस के अंतर्गत चेक का भुगतान किसी भी केंद्र में किया जा सकता है जिससे चेक को अदाकर्ता शाखा में भेजने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। स्थानीय चेकों की तरह ही स्पीड क्लियरिंग में भी बाहरी चेकों का संग्रहण टी+1 अथवा 2 आधार पर ही किया जाता है। अभी स्थानीय चेकों को टी+1 कार्य दिवस के आधार पर प्रसंस्कृत किया जाता है और ग्राहकों को निधियों के आहरण पर टी+1 अथवा 2 आधार पर लाभ मिलता है। 'टी' का आशय है लेनदेन का दिवस अर्थात समाशोधन गृह में चेक को प्रस्तुत किए जाने की तारीख। स्पीड क्लियरिंग के माध्यम से प्रस्तुत चेकों के मामले में बचत खाता ग्राहकों के लिए ₹ 1 लाख तक की राशि के लिए कोई भी प्रभार नहीं लिया जाता है। बचत खाता ग्राहकों के लिए ₹ 1 लाख से अधिक मूल्य के चेकों तथा अन्य खातों में किसी भी राशि के लिए संग्रहण प्रभार का निर्धारण बैंकों के विवेक पर छोड़ा गया है परंतु ऐसे प्रभार तर्कसंगत होने चाहिए।

प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (डीबीटी) योजना – दिशा–निर्देश

हाल ही में डीबीटी पर मैसूर में एक कार्यशाला आयोजित की गई जिसमें भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण (यूआईडीएआई) के अध्यक्ष, चुनिंदा राज्यों के वित्त सचिव, भारतीय रिज़र्व बैंक के उच्च प्रबंध तंत्र और कर्नाटक राज्य के बैंकरों ने भाग लिया। कार्यशाला में बैंक खातों में आधार संख्या जोड़ने में हुई प्रगति की समीक्षा करते हुए इस बात पर बल दिया गया कि बैंकों को बड़ी संख्या में खाते खोलने के लिए कदम उठाने चाहिए, इन खातों में आधार संख्याएं जोड़ लेनी चाहिए तथा इसे एक निरंतर चलने वाले एवं बढ़ते कारोबारी अवसर के रूप में देखना चाहिए। उदाहरण के रूप में बैंक खाते खोलने एवं बैंक खातों में आधार संख्या जोड़ने में एलपीजी वितरकों की सेवाएं उपयोग में लाने की संभावना को भी संदर्भित किया गया था।

इसके अलावा बैंकों को हाल ही में एलपीजी सब्सिडी सहित सरकारी प्रतिलाभों पर आधारित प्रत्यक्ष लाभ अंतरण को सुचारु रूप से लागू करने में सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से सूचित किया गया है कि वे (i) सभी डीबीटी जिलों में खाते खोलने और आधार संख्या को जोड़ लेने का कार्य पूरा करने के लिए कदम उठाएं; (ii) लाभार्थियों के बैंक खातों में आधार संख्या जोड़ने में होनेवाली प्रगति की बारीकी से निगरानी करें; (iii) आधार संख्या को जोड़ने के अनुरोध के संबंध में लाभार्थी को प्राप्ति–सूचना देने एवं आधार संख्या जोड़ दिए जाने की पुष्टि भेजने की भी एक प्रणाली स्थापित करें; (iv) संबंधित राज्य सरकारी विभाग के साथ–साथ जिला स्तर पर डीबीटी कार्यान्वयन समेकन समिति बना लें और बैंक खातों में आधार संख्या जोड़े जाने के कार्य की समीक्षा करें; (v) यह सुनिश्चित करें कि बैंक द्वारा संबद्ध किए गए व्यवसाय प्रतिनिधियों (बीसी) के जिला और गांववार नाम एवं अन्य ब्योरे एसएलबीसी की वेबसाइट पर प्रदर्शित किए गए हैं तथा (vi) बैंक खातों में आधार संख्या जोड़ी जाने से संबंधित शिकायतों का निवारण करने के लिए प्रत्येक बैंक में शिकायत निवारण तंत्र स्थापित करें और प्रत्येक जिले में एक शिकायत निवारण अधिकारी नामित करें।

❍❍❍

पुस्तक समीक्षा

120 करोड़ भारतीयों का बाज़ार

लेखिका : सुश्री रमा बीजापुरकर

प्रकाशक – प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

मूल्य : ₹ 350 *पृष्ठ संख्या – 218*

पुस्तकें ज्ञान का अमूल्य स्रोत होती हैं। कुछ पुस्तकें अपने भीतर इतना सब कुछ समाहित किए होती हैं कि उसे देखकर, पढ़कर यह कहना अतिशयोक्ति नहीं लगती कि उसके कैनवास के विस्तार में सदियों का ज़ेहन क्रियाशील है। कुछ ऐसा ही आभास रमा बीजापुरकर की पुस्तक – '120 करोड़ भारतीयों का बाज़ार' पढ़कर होता है। उनके अनुभवों का भारत न केवल विशाल है अपितु विविधताओं की ऐसी जटिल एवं संगुंफित जमीन है जो कहीं भी, किसी भी कोण से सीधी या समानांतर रेखा में नहीं है। भारतीय उपभोक्ता बाज़ार का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए एक–एक बात जितने ठोस तरीके से वर्णित है उससे पुस्तक की उपयोगिता स्वतः प्रमाणित हो जाती है। पुस्तक का शीर्षक इतना आकर्षक है कि यह पुस्तक हर भारतीय को अपनी पुस्तक लगती है क्योंकि इसके केंद्र में भारत का हरेक नागरिक है, उसकी समस्याएं हैं और उपभोक्ता बाज़ार के माध्यम से भारतीयों के जीवन–दर्शन की दास्तान है जिसे बड़ी सहजता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

पुस्तक की भाषा सशक्त है। विषय के भीतर आर्थिक एवं सामाजिक सरोकारों का अनंत सिलसिला है। अंदाज़े–बयां इतना भारतीय है कि पुस्तक पढ़ने के बाद इस बात पर गर्व होने लगता है कि मेरे देश की भाषा हिंदी में अभिव्यक्ति की इतनी जबरदस्त सामर्थ्य है कि फिक्र व चिंतन का कोई पहलू ऐसा नहीं है जिसके लिए हमारे पास शब्द न हों, अभिव्यक्ति न हो। रमा बीजापुरकर की भाषा परिमार्जित एवं सभी की समझ में आने वाली भाषा है। पुस्तक का विषय काफी हद तक उपभोक्ता एवं उनकी आर्थिक पृष्ठभूमि को छूता हुआ बाज़ार की पगडंडियों एवं सड़कों से गुजरता है। इसके लिए एक मंझे हुए दिमाग, विस्तृत अध्ययन तथा लंबे अनुभवों की आवश्यकता होती है। व्यावहारिक दृष्टिकोण और बाज़ार एवं उद्योगजगत के जिये हुए पलों को सहज ढंग से व्यक्त करने की कला में माहिर लेखिका को पाठक सैल्यूट किए बिना नहीं रहेंगे।

भारतीय बाज़ार एक ऐसा बाज़ार है जो बिखरा हुआ, अव्यवस्थित एवं अनियंत्रित है। अधिकांश बाजारों की स्थिति दयनीय है। वहां तक सड़कें मुश्किल से जाती हैं, बैलगाड़ी से पहुंच हो सकती है मोटरगाड़ियों की रिसाई नहीं है। शाम ढले बाज़ार अंधेरे में खो जाते हैं, बिजली का दूर–दूर तक निशान नहीं होता। ऊबड़–खाबड़, संकरे रास्ते, धूल और धूप का साया, पसीने में सने काश्तकार व विक्रेता, बाज़ार में उत्पाद रखने की कच्ची व कंकरीली ज़मीन। उपभोक्ता कम पैसे में अधिक–से–अधिक खरीदने का आकांक्षी और विक्रेता धन के अभाव में कम कीमत पर बेचने के लिए बाध्य। वहीं शहरी बाज़ारों में उत्पादों और ब्रांडों की भरमार है। छोटी से बड़ी कंपनियां हैं, देशी–विदेशी समस्त माल प्रचुरता में उपलब्ध है। यह पुस्तक जहां भारतीय बाज़ार का विश्लेषण करती है वहीं भारतीय उपभोक्ता और उसकी प्रवृत्तियों का बारीकी से अध्ययन पेश करती है। भारतीय बाज़ार एक सीधी रेखा में विकसित नहीं हुआ है। एक तरफ अपार क्रय–शक्ति है तो दूसरी तरफ अभावों का न खत्म होने वाला सिलसिला है। इन परिस्थितियों में कंपनियों को बाज़ार में अपने उत्पाद उतारने एवं बाज़ार–विशेष में निवेश करते समय अलग–अलग दृष्टिकोण अपनाने होंगे। ऐसे असमान बाज़ार एवं उपभोक्ता व्यवस्था के मद्देनज़र पुस्तक इस बात को रेखांकित करती है कि कंपनियों को ''अपना भारत'' स्वयं बनाना होगा और यह तय करना होगा कि वे किस भारत की सेवा करना चाहती हैं।

भारतीय बाज़ार ने पूरी दुनिया को अपनी ओर आकर्षित किया है। विविधता से भरे इस उपग्रह का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्वरूप इतना पेचीदा है कि बिना प्रभावी सर्वेक्षण एवं सुस्पष्ट नीति के किया गया कोई भी प्रयोग न केवल दिग्भ्रमित कर सकता है अपितु नकारात्मक परिणाम की खाई में धकेल सकता है। पुस्तक की ये पंक्तियां ''लाभ–हानि का लेखा उपभोक्ताओं की पसंद से वास्ता रखता है, न कि आपूर्ति विषयक अर्थव्यवस्था से'' बाज़ार की मांग और आपूर्ति सिद्धांत को नए नज़रिये से देखने की एक नूतन कोशिश है। जिस पुस्तक की भूमिका आई. आई.एम. अहमदाबाद के प्रख्यात प्रोफेसर श्री सी.के. प्रह्लाद ने, प्राक्कथन इन्फोसिस के अध्यक्ष श्री एन.आर.नारायणमूर्ति ने लिखा हो और पुस्तक में कवर किए गए विषय को आकार प्रदान करने में भारतीय रिज़र्व बैंक के उप गवर्नर डॉ. राकेश मोहन, श्री सुबीर गोकर्ण एवं अन्य विभूतियों का योगदान हो, उस पुस्तक

की उपादेयता स्वयंसिद्ध है। सुश्री रमा बीजापुरकर आईआईएम, अहमदाबाद की छात्रा थीं, बाद में वहां की विजिटिंग फैकल्टी हो गईं। वे 'बाज़ार रणनीति और उपभोक्ता' मामलों की सुप्रसिद्ध ज्ञाता हैं। उन्होंने अपने अनुभवों को इस पुस्तक में समेटा है और न केवल भारतीय बाज़ार को अपितु विश्व बाज़ार को इस पुस्तक के माध्यम से एक नई अंतर्दृष्टि प्रदान की है।

पुस्तक ''120 करोड़ भारतीयों का बाज़ार'' अपने भीतर 13 अध्यायों को समेटे हुए 218 पृष्ठों तक फैली हुई है। पुस्तक के प्रथम अध्याय ''भारत के लिए निर्मित'' में उन्होंने अपनी बात इस तथ्य से प्रारंभ की है कि भारत विश्व का भावी विकासमान बाज़ार है, जिसने अपनी यात्रा अभी–अभी प्रारंभ की है और जिसके पास 21 वर्ष से कम आयु के 45 करोड़ युवा हैं। भारत की नवीन उपभोक्ता नीति के संबंध में वे वास्तविक बदलाव 1991 की आर्थिक सुधार क्रांति से महसूस करती हैं। पुस्तक की लेखन–शैली इतनी सहज है कि हर कोई इसे आसानी से समझ सकता है। नई बाज़ार व्यवस्था, आधुनिक वितरण प्रणाली, उभरते बाज़ार की दशा और दिशा का उल्लेख करते हुए यह कथन कि यह अनुमान लगाना कि भारतीय उपभोक्ता वैसा ही है, जैसा अमरीकी उपभोक्ता बीस साल पहले रहा होगा, गलत है। यहां वास्तविकता यह है कि उपभोक्ता को वर्तमान मुद्दे प्रभावित करते हैं। भारत के उभरते बाज़ार के संबंध में यह लेखन – 'भारत के बच्चों की तुलना विश्व में किसी अन्य जगह से नहीं की जा सकती। गरीब देश का यह बच्चा इंटरनेट पीढ़ी का बच्चा है जिसकी आकांक्षाएं बहुत सीमित संभावनाओं में भी उछालें मारती हैं, एक ऐसी परिस्थिति जो पहले किसी देश में नहीं रही,' सच्चाई पर आधारित है और यह तथ्य हम सभी को प्रभावित करता है।

पुस्तक के दूसरे अध्याय ''भारतीय उपभोक्ता : बाज़ार के मिश्रित संदेश'' में यह स्पष्ट किया गया है कि इस समय जहां विश्व के अन्य भाग बूढ़े होने लगे हैं, वहीं भारत में युवा–शक्ति का बोलबाला है। यह सुनने में अच्छा अवश्य लगता है किंतु चौंकाने वाला तथ्य यह है कि यद्यपि इस देश में कई सिलिकन वैली पैदा हो सकती हैं लेकिन यहां 30 करोड़ लोग 1 डालर प्रतिदिन से कम पर जिंदा हैं। पुस्तक में कहीं–कहीं मनोरंजक शैली का प्रयोग किया गया है जो पाठक को आकर्षित करती है जैसे – 'पिछले कई सालों से भारत चिल्ला रहा है कि वह (आर्थिक संभावनाओं से) गर्भवती के समान है और जल्द ही नए एवं आकर्षक बाज़ार को जन्म देगा, जो लंबे समय तक विकसित होता रहेगा।' पुस्तक में कई स्थानों पर यह संकेत दिए गए हैं कि भारतीय बाज़ार का परिदृश्य एवं परिप्रेक्ष्य बदल रहा है, किंतु अभी भी भ्रम की स्थिति बनी हुई है। यह बात सिद्ध करने के लिए उदाहरण दिए गए हैं कि भारतीय बाज़ार में अचानक बत्ती गुल हो जाती है, एयरपोर्ट खस्ताहाल हैं, सड़कों की दशा दयनीय है। भारतीय उपभोक्ता की चाल एक शराबी की तरह है। वह अंततः घर ज़रूर पहुंचेगा, लेकिन दो कदम आगे रखेगा तो दो कदम अगल–बगल में और एक कदम पीछे की तरफ। इस बेतरतीब बाज़ार को कंपनियों को समझने के लिए लगातार सर्वेक्षण के जरिए नई–नई तरकीबों का इस्तेमाल करना आवश्यक है और यह तय करना उनके लिए श्रेयस्कर होगा कि कंपनियों के लक्ष्य का भारत कौन सा है।

पुस्तक के तीसरे अध्याय ''भारतीय उपभोक्ता की चिंता क्यों'' में इस तथ्य को उद्घाटित किया गया है कि यद्यपि भारतीय उपभोक्ता विभक्त मानसिकता वाला है उसके बावजूद भारत में 100 करोड़ उपभोक्ता हैं जो 1.6 प्रतिशत की रफ्तार से प्रतिवर्ष बढ़ रहे हैं। नए बाज़ारों का उद्गम हो रहा है, आर्थिक गतिविधियां तेज हो रही हैं, बदलाव की आंधी सी चल रही है जो विकास की गति को निश्चित रूप से नया आयाम देगी।

चौथा अध्याय ''भारत के उपभोक्ता की मांगों की समझ'' का विश्लेषण करता है। इसमें भारतीय अर्थव्यवस्था एवं उपभोक्ताओं की स्थिति का ब्योरा प्रस्तुत करते हुए अन्य देशों जैसे चीन, अमेरिका, रूस, ब्राज़ील की जीडीपी एवं आबादी के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। उपभोक्ता की मांग–संरचना, आंकड़ों की तिकड़मबाज़ी, उपभोक्ता–वर्ग का आकार, मूल्य–अनुकूलन जैसे मुद्दों पर बड़ी स्पष्टता से प्रकाश डाला गया है। भारतीय उपभोक्ता को पांच वर्गों में विभाजित किया गया है – अमीर लोग, कंज्यूमिंग क्लास, उन्नतिशील वर्ग, आकांक्षी–वर्ग, दीन–हीन वर्ग। इन समस्त उपभोक्ताओं के लिए एक ही उत्पाद की विभिन्न क्वालिटी विभिन्न मूल्यों पर उपलब्ध है ताकि कंपनी अपने उत्पाद की बिक्री समाज के अंतिम व्यक्ति तक कर सके।

पांचवें अध्याय का शीर्षक अत्यंत आकर्षक है ''आखिर भारतीय उपभोक्ता की क्रय–शक्ति कितनी है।'' इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपना चेहरा नज़र आ जाता है। भारत बृहत मध्यम वर्ग बाज़ार के बड़े खरीदार में से है किंतु इस संबंध में कुछ मिथ्या धारणाएं भी हैं। वार्षिक घरेलू आय की तुलना करते हुए यह परिचय करवाया गया है कि उपभोक्ता की आय के हिसाब से ही

उसकी क्रयशक्ति का निर्धारण होता है। सर्वेक्षणों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि 70–75 प्रतिशत तक भारतीय उपभोक्ता की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। भारत के 5–6 करोड़ लोगों की क्रय–शक्ति उत्कृष्ट है, 10 करोड़ लोग उससे कम की स्थिति में हैं, और 10–15 करोड़ लोगों ने उस दिशा में कदम बढ़ाया है।

अध्याय 6 में ''भारतीय जनगण की मानसिकता'' पर रोशनी डाली गई है। भारतीय बाज़ार सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषिक दृष्टि से बंटा हुआ है। इस विविधता को ध्यान में रखें तो भारत में अनेक भारत निवास करते हैं। एक सूचना प्रौद्योगिकी वाला भारत है तो दूसरा कृषि आधारित, तीसरा गैर–कृषि वाला, चौथा सरकारी नौकरी वाला तथा पांचवां स्वरोजगार वाला। भारतीय उपभोक्ता चंचल स्वभाव का है। भिन्न–भिन्न वर्गों को अलग–अलग चीज़ें प्रभावित करती हैं। यहां बहुआयामी व्यक्तित्व की विभक्त मनस्कता है।

अध्याय 7 ''उपभोग का निर्धारण'' में मुख्य चर्चा–बिंदु 'मेरा लक्ष्य भारत' है। इसके अंतर्गत समाज के ऐसे वर्ग की विवेचना की गई है जो पैसा कमाने वाला तो है, किंतु अभिलाषी नहीं है, वहीं ऐसा वर्ग भी है जो इसके विपरीत है। संघर्षशील हमेशा मुश्किलों से बचने और जीवन को बेहतर बनाने में लगे रहते हैं।

अध्याय 8 ''उपभोक्ता–भारत में आने वाले बदलाव का अध्ययन एवं पूर्वानुमान'' पर चर्चा प्रस्तुत करता है। यद्यपि समाज में परिवर्तन तेजी से हो रहा है किंतु कई बार बाज़ार की प्रतिक्रियाएं इतनी असंवेदी होती हैं कि पता ही नहीं चलता कि परिवर्तन हो रहा है लेकिन उपभोक्ता की दुनिया भीतर से प्रभावित होती रहती है।

अध्याय 9 का केंद्र–बिंदु है ''भारतीय उपभोक्ता के सांस्कृतिक आधार'' जिसके अंतर्गत उदारीकरण के सांस्कृतिक अभिप्राय को सोदाहरण समझाया गया है। उपभोक्ता के व्यवहार 3 बातों से प्रभावित होते है : मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारणों से। गरीबी–अमीरी, स्वदेशी, आत्म–निर्भरता, विचारधारा, सुरक्षा, संतोष, संयम, सशक्तीकरण और क्षमता–संवर्धन, परंपराओं का निर्वाह आदि अनेक पहलुओं पर बोधगम्य तरीके से बहस की गई है।

दसवां अध्याय ''युवा एवं महिलाओं का भारत – एक विवेचन'' पर आधारित है जिसमें यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि पूरे भारत में उदारीकरण की लहर चलने से लेकर अब तक जो पीढ़ी तैयार हुई है वह नई और वैश्विक सोच वाली पीढ़ी है जिसका उस दौर से कोई सरोकार नहीं है जिसमें उनके माता–पिता रहे हैं। यह विकास का नया पहलू है जो अत्यधिक उपभोक्तावादी प्रवृत्ति को दर्शाता है।

अध्याय 11 ''ग्रामीण भारतीय उपभोक्ता'' में यह आशा प्रकट की गई है कि ग्रामीण भारत बदल रहा है, आय बढ़ रही है, खरीदने की ताकत में वृद्धि हो रही है। सकल घरेलू उत्पाद का आधे से अधिक हिस्सा इसी क्षेत्र की देन है। अब ग्रामीण क्षेत्र में बैंक फैल गए हैं, एटीएम हैं, बुनियादी सुविधाएं मुहैया हो रही हैं और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का ढांचा कृषि से आगे निकल चुका है।

अध्याय 12 में ''सबसे गरीब उपभोक्ता का आकलन'' किया गया है। यह सिद्ध किया गया है कि भारतीय ग्रामीण उपभोक्ता अब गरीब जरूर हैं किंतु पिछड़े नहीं हैं। अब वे नई तकनीकों, नए उत्पादों की ओर उन्मुख हो गए हैं, मात्र भगवान के भरोसे नहीं हैं। उत्पाद में बदलाव, कम कीमत, किफायती स्टोर, बेहतर सेवा से यह क्षेत्र अत्यधिक उपजाऊ सिद्ध हो सकता है।

तेरहवां अध्याय ''जीतना भारतीय बाज़ार में'' उत्पाद बेचने वाली कंपनियों के लिए मार्गदर्शी पाठ के समान है। बाज़ार नीतियां मात्र इस आधार पर न बनाई जाएं कि भारत एक परिवर्तनशील बृहत् बाज़ार है अपितु विशिष्ट बाज़ार तथा जनता के बाज़ार को निकट से समझना, परखना होगा; अमीर तथा गरीब उपभोक्ताओं के लिए पृथक नीतियां बनाकर बाज़ार में उत्पाद लाने होंगे ताकि भारतीय बाज़ार में सफल होने की चुनौती का समाधान मिल सके।

सुश्री रमा बीजापुरकर ने इस पुस्तक में भारतीय उपभोक्ता बाज़ार का जो खाका प्रस्तुत किया है वह देशी एवं विदेशी कंपनियों के लिए भारतीय बाज़ार को समझने का दस्तावेज़ बन गई है। निवेशकों, कंपनियों के सर्वेक्षकों, बाज़ारों के विश्लेषकों तथा भारतीय उपभोक्ता बाज़ार के संबंध में पूर्वानुमान लगाने वालों, विशेषज्ञों, स्कॉलरों, शोध करने वाले विद्यार्थियों एवं संस्थाओं के लिए यह पुस्तक संदर्भ के रूप में इस्तेमाल की जाएगी। यह पुस्तक स्वयं में एक शोध के समान है जिसमें बाज़ार के रूप–स्वरूप का बारीकी से अध्ययन किया गया है। यह पुस्तक उद्योग जगत का सतत रूप से मार्गदर्शन करती रहेगी।

● **काजी मु. ईसा**
उप महाप्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

❍❍❍

लेखकों से

इस पत्रिका का उद्देश्य बैंकिंग और उससे संबंधित विषयों पर हिंदी में मौलिक सामग्री उपलब्ध कराना है। बैंकिंग विषयों पर हिंदी में मूल रूप से लिखने वाले सभी लेखकों से सहयोग मिले बिना इस उद्देश्य की पूर्ति कैसे होगी ? हमें इसमें आपका सक्रिय सहयोग चाहिए । बैंकिंग विषयों पर हिंदी में मूल रूप से लिखे स्तरीय लेखों की हमें प्रतीक्षा रहती है । साथ ही, अर्थशास्त्र, वित्त, मुद्रा बाज़ार, पूंजी बाज़ार, वाणिज्य, विधि, मानव संसाधन विकास, कार्यपालक स्वास्थ्य, मनोविज्ञान, परा बैंकिंग, कंप्यूटर, सूचना प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों से जुड़े विशेषज्ञ इन विषयों पर व्यावहारिक या शोधपूर्ण मौलिक लेख भी हमें प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं। प्रकाशित लेखों और पुस्तक समीक्षाओं पर मानदेय देने की व्यवस्था है। **कृपया प्रकाशनार्थ सामग्री भेजते समय यह देख लें कि :**

- सामग्री बैंकिंग और उससे संबंधित विषयों पर ही है ।
- उसमें दी गई जानकारी उपयोगी और अद्यतन है एवं अधिकतम 8 टंकित पृष्ठों में है ।
- लेख यदि संभव हो तो आकृति/यूनिकोड फांट में rajbhashaco@rbi.org.in और/अथवा savitrisingh@rbi.org.in नामक ई–मेल आईडी पर भेजने की व्यवस्था की जाए ।
- वह कागज़ के एक ओर स्पष्ट अक्षरों में लिखित अथवा टंकित है ।
- यथासंभव सरल और प्रचलित हिंदी शब्दावली का प्रयोग किया गया है और अप्रचलित एवं तकनीकी शब्दों के अर्थ कोष्ठक में अंग्रेजी में दिए गए हैं ।
- यह प्रमाणित करें कि लेख मौलिक है, प्रकाशन के लिए अन्यत्र नहीं भेजा गया है और 'बैंकिंग चिंतन–अनुचिंतन' में प्रकाशनार्थ प्रेषित है।
- लेख में शामिल **आंकड़ों, तथ्यों आदि के संबंध में स्रोत का स्पष्ट उल्लेख करें ।**
- प्रकाशन के संबंध में यह सुनिश्चित करें कि **जब तक लेख संबंधी अस्वीकृति की सूचना प्राप्त नहीं होती, संबंधित लेख किसी अन्य पत्र–पत्रिका में प्रकाशनार्थ न भेजा जाए ।**

प्रकाशकों से

जो प्रकाशक अपनी पुस्तक की समीक्षा करवाना चाहते हैं
वे कृपया अपनी पुस्तक की दो प्रतियां भिजवाने की व्यवस्था करें ।

पाठकों से

इस पत्रिका को आप निःशुल्क प्राप्त कर सकते हैं । इसके लिए आपको अपना अनुरोध लिखित रूप में 'कार्यकारी संपादक, बैंकिंग चिंतन–अनुचिंतन' को भेजना होगा । आपका फार्म मिलते ही आपका नाम डाक सूची में शामिल कर लिया जाएगा और तदनंतर आपको पत्रिका अगले दो वर्ष तक मिलती रहेगी । दो वर्ष समाप्त होने के पूर्व आप अपनी सदस्यता को नवीकृत कर लिया करें ताकि पत्रिका निरंतर मिलती रहे । आपसे अनुरोध है कि अपने सहयोगियों को भी यह जानकारी प्रदान करें तथा अपनी मांग से हमें तत्काल अवगत कराएं ताकि हम तदनुसार प्रतियों का मुद्रण कर सकें । **पुराने पाठक कृपया पत्राचार करते समय अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख अवश्य करें।**

• पाठकों की प्रतिक्रियाओं का हमें सदैव इंतजार रहता है •

बैंकिंग शब्दावली

वित्तीय क्षेत्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा शब्दावली में एकरूपता सुनिश्चित किए जाने के क्रम में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रकाशित बैंकिंग शब्दावली एक ऐसा शब्दकोश है जिसमें बैंकिंग एवं वित्तीय क्षेत्र से जुड़े महत्वपूर्ण अंग्रेजी शब्दों की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए उनके लिए उपयुक्त हिंदी शब्दों का चयन किया गया है। 288 पृष्ठ वाले इस कोश का मूल्य 80.00 रुपये (डाक व्यय अतिरिक्त) है। इसे प्राप्त करने हेतु निम्न पते पर संपर्क किया जा सकता है:

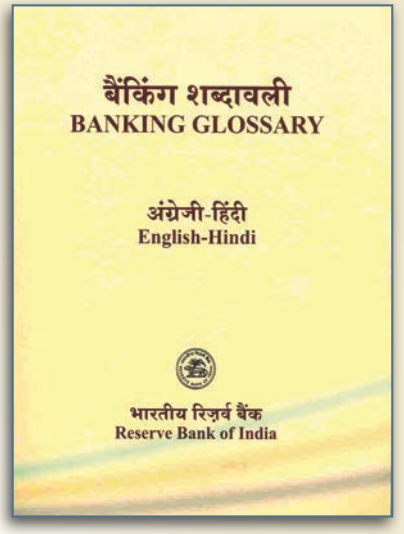

निदेशक, रिपोर्ट समीक्षा और प्रकाशन (बिक्री अनुभाग)
आर्थिक और नीति अनुसंधान विभाग
भारतीय रिज़र्व बैंक
अमर भवन, फोर्ट, मुंबई - 400 001

भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रकाशित नवीनतम हिंदी पुस्तक

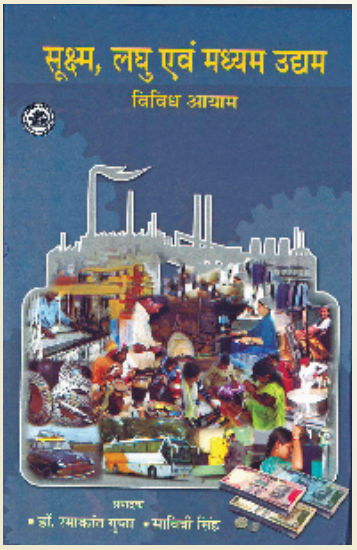

'सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम - विविध आयाम'

मूल्य : 300/- रुपये

पुस्तक मिलने का पता

मे. आधार प्रकाशन प्रा. लि.
एस.सी.एफ. 267, सेक्टर 16
पंचकूला (हरियाणा)

इस अंक के प्रकाशन में राजभाषा विभाग, केंद्रीय कार्यालय, भारतीय रिज़र्व बैंक के सहायक प्रबंधक (राजभाषा) श्री एच. पंढरीनाथ और श्रीमती मीनू मंजरी का सहयोग प्राप्त हुआ।

पंजीकरण संख्या - 47043/88

रचनाएं आमंत्रित हैं – ग्राहक सेवा विशेषांक

(अक्तूबर–दिसंबर 2013 अंक)

बैंकिंग चिंतन–अनुचिंतन का अक्तूबर–दिसंबर 2013 अंक ग्राहक सेवा विशेषांक होगा जिसमें आपकी रचनाएं आमंत्रित हैं। इसमें निम्नलिखित विषय शामिल हो सकते हैं :

सामान्य लेख

- ग्राहक सेवा और संप्रेषण
- ग्राहक सेवा के सिद्धांत
- ग्राहक शिकायत निवारण के विभिन्न मंच
- ग्राहक सेवा के 10 सूत्र
- ग्राहक सेवा के सर्वोच्च 5 कौशल
- बैंकिंग उत्पादों का दुर्विक्रय (mis-selling) एवं ग्राहक शोषण
- बैंकिंग उत्पादों के दुर्विक्रय (mis-selling) को रोकने में आरबीआई की भूमिका
- ग्राहक संबंध प्रबंधन
- ग्राहक शिकायत निवारण
- ग्राहक सुरक्षा – विविध प्रावधान
- ग्राहक सेवा प्रशिक्षण
- ग्राहक सेवा में भाषा की भूमिका
- ग्राहक सेवा प्रेरणास्पद कथन
- क्रेडिट कार्ड धोखाधड़ी – ग्राहक सेवा की बड़ी चुनौती
- बैंकों में बढ़ता सेवा शुल्क – घटती ग्राहक सेवा
- व्यावसायिक बैंकों का बढ़ता व्यवसायीकरण
- ग्राहक सेवा की कसौटी पर निजी बैंक बनाम सरकारी बैंक
- ग्राहक सेवा का मशीनीकरण एवं संवेदनशून्यता
- टेक्नोलॉजी और ग्राहक सेवा तथा इनसे जुड़े अन्य विषय।

ग्राहक सेवा संबंधी सांविधिक ढांचा/रचनाएं

- बैंकिंग लोकपाल अधिनियम
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम
- भारतीय बैंकिंग संहिता और मानक बोर्ड (बीसीएसबीआई)
- निक्षेप बीमा और प्रत्यय गारंटी निगम (डीआईसीजीसी) और उसकी कार्यप्रणाली

रचनाएं पत्रिका के स्तर के अनुकूल और मौलिक होनी चाहिए और पहले अन्यत्र कहीं प्रकाशित नहीं होनी चाहिए। रचनाओं को पुस्तक रूप में संकलित कर प्रकाशित करने पर लेखक को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर मानदेय दिए जाने का प्रावधान है।

रचनाएं हमें 15 सितंबर 2013 तक मिल जानी जाहिए।